# सत्यवादीके नियम ।

---

( १ ) सत्यवादीका वार्षिक मूल्य डांक खर्च सहित १।) पेशगी है।

( २ ) प्राप्त अंकसे पहला अंक यदि न मिला हो तो भेज दिया जायगा। दो तीन महीनेके बाद लिखने वालोंको पहलेके अङ्क दो आना मूल्यसे प्राप्त हो सकेंगे।

( ३ ) इस पत्रमें राज्य और धर्मविरुद्ध लेख प्रकाशित नहीं हुआ करेंगे।

( ४ ) लेखोंके न्यूनाधिक करने और उनके छापने न छापनेका अधिकार सम्पादकको होगा।

( ५ ) बैरंग पत्र नहीं लिये जावेंगे उत्तरके लिये टिकट भेजना चाहिये।

( ६ ) बदलेके पत्र, समालोचनाकी पुस्तकें, लेख, मूल्य और सब प्रकारके पत्र नीचे पतेसे आने चाहिये।

सम्पादक—सत्यवादी,

हि० चन्दावाड़ी, पोष्ट—गिरगांव,

बम्बई.

ॐ

# सत्यवादी ।

सत्य एक अपूर्व रत्नाकर है, जो इसमें अवगाहन करते हैं, उन्हें अलभ्य रत्न प्राप्त होते हैं ।

प्रथम भाग. { भाद्रपद श्रीवीर नि. २४३९ विक्रम १९६९ } १ अंक

## मङ्गल पुष्पाञ्जलि ।

(१)

शान्ति स वः शान्तिजिनः करोतु
विभ्राजमानो मृगलाञ्छलेन ।
शशीव विश्वप्रमदैकहेतु-
र्यः पापचक्रव्यथको बभूव ॥

(२)

श्रीवीरनाथाय नमः प्रकाम-
मनन्तवीर्यातिशयाय तस्मै ।
अन्तःस्थमेकाङ्गपरिग्रहो यः
कामादिचक्रं युगपज्जिगाय ॥

(३)

अशेषभाषामयदेहधारिणी
जिनस्य वक्त्राम्बुरुहाद्विनिर्गता
सरस्वती मे कुरुतादनश्वरीं
जिनश्रियं स्यात्पदलाञ्छनाश्विता ॥

ॐ शान्ति

# जातीयसभाकी स्थापनाका विचार।

जो जातिके हितैषी हैं, जिन्हें अपनी जातिकी गिरी अवस्थाका ध्यान रहता है और जो अपने भाइयोंके दुःखमें दुखी होते हैं, वे कभी निकम्मे वैठे रहना पसन्द नहीं करते। उनके पवित्र हृदयमें अपनी जातिकी उन्नतिके उत्तम २ विचार निरन्तर उत्पन्न होते रहते हैं। और जो जाति किसी जमानेमें उन्नतिके शिखरपर पहुंचकर फिर यदि अज्ञानान्धकारमें डूव जाय तव तो उसके शुभचिन्तकोंको और भी वड़ी भारी चिन्ता आकर धर दवाती है। वे उस चिन्ताके मारे सुखकी नींद न सोकर अपनी पुनर्वार उन्नतिकी इच्छासे उठनेकी कोशिश करते हैं, अपने सोते हुये भाइयोंको जगाकर उन्हें अपनी दशाका ज्ञान कराते हैं और उनके लिये चिरकालसे अज्ञान कंटकाकीर्ण मार्गको साफ करते हैं। उसमें उनको भारी विपत्तियां सहनी पड़ती हैं। परन्तु वे उनकी कुछ परवा नहीं करते हैं। उनका सिद्धान्त है कि—

परोपकारार्थमिदं शरीरम्।

ऐसे महात्माओंके उदाहरणोंकी देशके इतिहासमें कमी नहीं है। वे महात्मा जातीय काममें अपनी वलि देकर आज हमारे लिये आदर्श हुये हैं। हमें उन पवित्र आत्माओंके सुपथका अनुसरण करना चाहिये। स्वामी निष्कलंक, दीवान अमरचन्द्रजी और पंडितप्रवर टोडरमलजी आदि पुण्यपुरुषोंकी जीवनी हमें पूर्ण शिक्षा देती है कि जातीय काम किस रीतिसे किये जाते हैं? और कैसे हम त हो सकते हैं?

यह युग प्रगतिशील है। इसमें सबको अपनी २ उन्नति करनेका पूर्ण अधिकार है। जब कि सब जातियां अपनी २ उन्नति करनेमें लग चुकी हैं, फिर हम भी क्यों न अपनी पवित्र—जातिके भविष्यकी चिन्ता करें? क्यों न अज्ञानान्धकारमें डूबी हुई जातिका उद्धार करें? इस विचारनें हमारे कईक जातिहितैपी सज्जनोंके दिलमें खटकासा उत्पन्न कर दिया। यही कारण है—जो खण्डेलवाल भाइयोंको घोर निद्रासे जगानेके लिये—अधः पतित खण्डेलवाल जातिका उद्धार करनेके लिये श्रीयुक्त पूज्य पं० पन्नालालजी और श्रीयुक्त खुशालचन्दजी पहाड्या नादगांव निवासीके हृदयमें विचार उत्पन्न हुआ। उन्होंने जातिके उद्धारका उपाय सोचा कि एक जातीय सभा स्थापित होनी चाहिये और उसके द्वारा जातिमें उन्नतिका संचार करना चाहिये।

परन्तु इतने बड़े महत्त्वके काममें दो जनोंकी सलाह क्या काम देगी? यह विचार कर आपने और भी दश पाँच सज्जनोंको पत्र लिखे और उनसे इस जातीय सभाके स्थापित करनेकी सम्मति ली। उसमें आप कृतकार्य हुये। आपके कार्यमें—

श्रीयुक्त सेठ गुलाबचन्दजी, धूलिया.
" " श्यामलालजी, नांदोड़.
" " लच्छीरामजी काशलीवाल, औरंगाबाद.
" " ढूंढीरामजी पाटनी, कांबीवाले.
" " चन्द्रभानजी काला, अमरावती.
" " बालारामजी पहाड्या, राकली.
" " तोतारामजी छाबड़ा, जलगांव.

श्रीयुक्त सेठ गुलाबचन्दजी बड़जात्या, राकली.
" " दगडूरामजी लुहाड्या, मांडोर.
" " भाऊलालजी पाटनी, नादगांव.

उक्त सज्जनोंने हृदयसे अपनी सहानुभूति दिखलाई और सभाके जलसेमें सम्मिलित होनेकी स्वीकारता दी। अपने विचारमें सबकी सम्मति देखकर आपका उत्साह और भी बढ़ गया। सबकी सम्मति हुई कि सभाका प्रारंभिक अधिवेशन श्रीकचनेरजी पर हो और वहीं सभाकी स्थापना होकर नियमावली वगैरह बनाई जाय।

कार्तिक शुक्ला १४ और १५ वि० १९६९ को कचनेरजी पर अधिवेशन हुआ। उसमें सभाका नाम—

"महाराष्ट्रीय खण्डेलवाल दिगम्बर जैन पञ्च महासभा।"

रक्खा गया। वहीं उसकी नियमावली बनाई गई और सर्व सम्मतिसे पास की गई। नियमावली अन्यत्र मुद्रित है। सभाके कार्यकर्त्ता इस प्रकार हैं—

सभापति श्रीयुक्त पं० धन्नालालजी काशलीवाल, बम्बई.
महामंत्री श्रीयुक्त श्यामलालजी काशलीवाल, चांदौड़.
उपमंत्री श्रीयुक्त दगडूरामजी लुहाड्या, भांडगांव.
कोषाध्यक्ष श्रीयुक्त गुलाबचन्दजी गंगवाल, धूलिया.

इस उत्सवमें लगभग एक हजार सज्जनोंकी उपस्थिति हुई थी। इस सभाने उस समय अपने हाथमें एक और महत्त्वका काम लिया था। वह यह कि, अपनी जातिमें जितने झगड़े होंगे उन सबका यह सभा फैसला किया करेगी। अपने इस काममें इसे गजपंथ-नैमित्तिक अधिवेशनमें आशातीत सफलता भी प्राप्त हुई है। जि-

सका खुलासा हाल सभाकी प्रथम वर्षकी रिपोर्टमें लिखा गया है। रिपोर्ट महामंत्रीके यहांसे मिलेगी।

गत वैशाख मासमें खामगांवमें श्रीयुक्त सेठ श्यामलालजी ओंकारदासजीने अपने निर्माण कराये हुये जिनमन्दिरकी प्रतिष्ठा करवाई थी। उस समय अपने जातिहितैषिताका पूर्ण परिचय देकर खण्डेलवालसभाको भी निमंत्रण दिया था। आपकी इच्छाके अनुसार सभाका अधिवेशन वहां किया गया। उसमें बारह उपयोगी प्रस्तावोंके अतिरिक्त एक यह भी प्रस्ताव हुआ था कि जातीयसभाकी ओरसे एक मासिक पत्र निकलना चाहिये। पत्रके बिना समाजकी उन्नति नहीं हो सकती। निश्चय हुआ था कि ख० म० दि० जै० पत्र महासभाकी ओरसे "खण्डेलवाल जैन" नामका मासिक पत्र निकाला जाय। यद्यपि पत्रका नाम खण्डेलवालजैन रक्खा गया था, परन्तु इस नाममें कई आपत्तियां देखकर इसकी जगह "सत्यवादी" नाम रक्खा गया है। सभाका उद्देश्य इस पत्रके द्वारा सर्व साधारणको लाभ पहुंचानेका है। वह चाहती है कि यह पत्र देशभरका प्रियपात्र बने। सभाका यह उदार उद्देश्य सर्वथा प्रशंसाके योग्य है। सच पूछो तो जैनधर्मका ही यह असली उदार सिद्धान्त है कि सत्वेषु मैत्री अर्थात् जीवमात्रसे मित्रता करनी चाहिये। इसी सिद्धान्तपर आज जैनधर्म अविचल रूपसे चला आता है। जैनियोंका वात्सल्य अङ्ग संसारमें प्रसिद्ध है। वह सब जीवोंको अपने बराबर देखनेका उपदेश देता है। उक्त प्रस्तावके अनुसार आज—

### सत्यवादीका जन्म—

हुआ है। इसका कर्त्तव्य जातिमें शिक्षाका प्रचार कर उसे घोर निद्रासे जगाना और उसे अपने कर्त्तव्यका ज्ञान कराना है।

खण्डेलवालोंकी हालत इस समय वहुत बिगड़ी हुई है। इस अवसरमें पत्रका जन्म कितना उपयोगी है, इसका विचार पाठक स्वयं कर सकते हैं। धार्मिक, सामाजिक और दैशिक उन्नतिके प्रधान कारण दो समझे जाते हैं। पहिला शिक्षा प्रचार और दूसरा पत्रप्रचार। जिस जातिमें और जिस देशमें शिक्षा और पत्रका प्रचार बहुत है वे अपनी २ उन्नतिके रास्तेपर आगे २ पैर वढ़ाये हुये चले जाते हैं और वे धीरे धीरे अपने अभीष्टकी सिद्धि भी करसकेंगे। हमारी जाति वहुत समयसे गिरती चली आरही है और इससे आज हमारी वह बुरी हालत होगई है, जिससे सहसा उद्धार होना कठिनसा जान पड़ता है।

भगवान वीरनाथके शासनका अस्तित्व अभी संसारमें विद्यमान है और पञ्चमकालके अन्तिम समय पर्यन्त रहेगा भी। परन्तु जैसी आज हमारी अवस्था है यही कुछ समयतक और वनी रही तो संभव नहीं कि हमारा अस्तित्व संसारमें वहुत समयतक रह सके। गत वर्षकी मर्दुमशुमारीसे यह स्पष्ट विदित होता है कि वीसवर्षोंके पहिले जैनियोंकी संख्या चौदहलाखके लगभग थी और आज पौने तेरहलाख है। अर्थात् वीसवर्षोंमें सवालाख जैनी घट गये। अव उक्त हिसाव लगाकर पाठक विचारें कि जैसी वीसवर्षोंसे हमारी अवस्था चली आती है उसी अवस्थामें हम अव भी पड़े रहें तो हमारा अस्तित्व कितने वर्षतक और रह सकता है? भाइयो! विचार करो और पहिली दशासे अपना मिलान करो, तव तुम स्वयं जान जाओगे कि इस समय हमारा आलस छोड़ना कितना आवश्यक है। कर्त्तव्यशील होना मनुष्यका पहिला उद्देश्य होना चाहिये। संसारमें

जो कर्त्तव्यशील हुये हैं उन्हींसे दूसरोंका भला हुआ है। इस गिरी हालतमें आपका कर्त्तव्य क्या है? उसके सुझानेको ही आज इस जातिसेवकने जन्म लिया है।

## पत्रके उद्देश्य।

( १ ) महाराष्ट्रीय खण्डेलवाल दिगम्बर जैन पञ्च महासभाने इस पत्रको इस अभिप्रायसे निकाला है कि जातिमें इसके द्वारा अविद्याका नाश होकर उसकी जगह विद्याका प्रचार हो।

( २ ) यद्यपि यह पत्र खास एक जातिकी ओरसे प्रकाशित होता है, परन्तु इसमें धर्म और राज्यसे अविरोधी सब प्रकारके लेख प्रकाशित हुआ करेंगे, जिनके द्वारा सर्व साधारण लाभ उठा सकें।

( ३ ) हमारी जाति इस समय दो बड़े २ विभागोंमें विभक्त है और उनमें कुछ विषय ऐसे हैं जिनके द्वारा जातिको किसी प्रकारका लाभ न पहुंचकर उलटी ईर्षा और द्वेषकी अधिकाधिक वृद्धि होती है। इस लिये इस पत्रमें उन विषयोंके लेख स्थान नहीं पा सकेंगे। यह पत्र अपने उन पवित्र उपायोंको सदा काममें लाता रहेगा, जिनके द्वारा इन दोनों विभागोंकी अनेक्यता मिटकर उसकी जगह एक्यताके सुखमय राज्यका निरन्तर विस्तार होने लगे।

( ४ ) जिस सभाका यह पत्र है, उसका एक यह उद्देश्य है कि जातिमें होनेवाले झगड़ोंका यह सभा फैसला करे। उसके अनुसार इस पत्रका भी उद्देश्य रहेगा कि मूर्खतावश या अज्ञानवश जो जातिमें अशान्ति फैल जाती है उसके

बीचमें यह पत्र हस्तक्षेप करेगा और शान्तिके साथ उनके विषयमें विवेचन कर अपनी उचितसम्मति भी देगा ।

दूसरी बात सम्वाददाताओंके सम्बन्धमें है। वह यह कि जो सम्वाददाता किसी विषयका जातीय सम्वाद इस पत्रमें मुद्रित होनेको भेजना चाहें, उन्हें बड़ी सावधानीसे सत्य सत्य घटनाका उल्लेख करके भेजना चाहिये। हम उसे सहर्ष स्थान देंगे। कोई सम्वाद-दाता किसीके पक्षपातसे वा अपने कलुषित हृदयसे किसी तरहके सम्वादके भेजनेकी कृपा न करें। यह हमारी विनीत भावसे प्रार्थना है। इतनी सावधानी रखते हुये भी संभव है कि कोई सम्वाद असत्य छप जावे तो पाठकोंको इस पत्रसे विरक्त न होना चाहिये। क्योंकि इसमें सम्पादकका कोई दोष नहीं कहा जा सकेगा। वह भूल सम्वाददाताकी है। हां इतना जरूर किया जायगा कि उस भूलका संशोधन आगेके अंकमें कर दिया जायगा। इतने कहनेका सार यह है कि कल्पना कीजिये—किसीने अपनी कन्याको बेचकर उसे किसी बुड्ढेसे विवाह दी। हमें उसका सम्वाद मिला। हमने उसे सब खुलासा विवरण सहित प्रकाशित कर दिया। क्योंकि जबतक ऐसी २ घृणित बातें स्पष्ट न लिखी जाँयगी तबतक समाज उनसे घृणा नहीं कर सकता। अब वह सम्वाद निकल गया असत्य, तो इस असत्यताका दोष सम्वाददातापर लगाना चाहिये। उसे हमारा दोष न समझना चाहिये। यह हमारी प्रार्थना है। हम जितने सम्वाद अपने पत्रमें प्रकाशित करेंगे उनके नीचे सम्वाददाताका नाम प्रायः रहा करेगा।

हम अपने सहयोगियोंसे भी विनीतभावसे प्रार्थना करते हैं कि ऐसे समयमें वे हमारे साथ शान्तिका वर्ताव करें। हमारी आन्तरिक

इच्छा किसीके साथ कलहके वर्तावकी नहीं है। आशा है कि सहयोगी गण और पाठक हमारी इस प्रार्थनापर पूर्ण ध्यान देंगे।

## मेरा निवेदन।

जिस महत्त्वके कार्यमें आज मैं हाथ डालना चाहता हूं वह मुझसे चल सकेगा यह बात कुछ विचारके योग्य है। क्योंकि यह काम पूर्ण अनुभवी और विद्वानोंकेद्वार ही किये जाने योग्य है। मुझ सरीखे अल्पज्ञके लिये तो कठिन ही नहीं किन्तु एक तरह असंभवसा है। इतनेपर भी अर्थात् मुझमें ऐसे योग्यताके कार्यके सम्पादनकी शक्तिके न होते हुये भी जो मैं इस कामको स्वीकार करता हूं वह केवल अपनी पवित्र जातिकी सेवा करनेकी इच्छासे।

मेरी इस महत्त्वाकांक्षापर बहुतोंको हँसी आवेगी। वे कहेंगे— जातीय सेवाका महाव्रत बड़ा कठिन है। जाति सेवा महाराणा प्रतापने की थी, जिन्होंने लगातार यवनोंके द्वारा बीसवर्ष तक घोर यंत्रणा भोगी, जङ्गल २ पहाड़ी २ में वे भटकते फिरे, जङ्गली घासकी रोटी उन्हें खानेको मिली और उनके साथ २ बेचारे बाल बच्चोंतकको दुःख उठाना पड़ा। परन्तु इन सब बातोंकी कुछ परवा न कर उन्होंने अपना जातीय सेवाका महाव्रत पूर्ण किया था। उसी तरह अकलङ्क और उनके छोटे भाई निष्कलंकने जाति सेवा कर बहुतसी आपत्तियां सहीं थीं। छोटे भाईने तो अपने पवित्र जीवनतककी बलिदे डाली थी। ऐसे हजारों आदर्श उदाहरण जाति सेवा करनेवाले महात्माओंके हैं। उनसे तुम पहिले अपना मिलान करो, उनकी शक्तियां देखो और उनकी विद्या पर विचार करो। इसके बाद ऐसी महत्त्वाकांक्षा करना चाहिये।

यह कहना अक्षरशः ठीक है। मैं इसे स्वीकार करता हूं। मुझमें न ऐसी विद्या है और न ऐसी शक्ति है जो जातीय सेवाके योग्य हो। परन्तु इस विचार पर ही निश्चित नहीं रहना चाहिये कि जो सब बातोंमें योग्य हो वही जाति सेवा कर सकता है और नहीं। यदि इसी विचारपर सब निर्भर हो जाँय तो आज संसारमें जितने उन्नतिके काम हो रहे हैं वे सब एक ही साथ बंद हो जाँय। क्योंकि न तो उतनी योग्यताके सब मनुष्य कभी होंगे और न फिर कोई काम ही हो सकेगा? हम यहां महात्मा जेम्स गारफील्डका उल्लेख करते हैं कि वह जब उत्पन्न हुआ था तब एक बिल्कुल साधारण किसानके घर हुआ था। परन्तु धीरे धीरे उसने अपनी यहां तक आकांक्षा बढ़ाई कि मुझे अमरीकाका प्रेसीडेंट अर्थात् सभापति होना चाहिये। यह इच्छा उसने अपनी मातासे जब प्रगट की तो उसने अपने बच्चेकी बातको हँसीमें डाल दी। परन्तु कर्तव्यशील मनुष्यके लिये कुछ कठिन नहीं होता। एक समय वह आया कि जेम्स अमरीकाकी पार्लियामेन्टका सभापति चुना गया। उसकी इच्छा पुरी हुई। उक्त घटनापर विचार करनेसे यह विश्वास दृढ़ नहीं रह सकता कि सर्व गुणसम्पन्न पुरुष ही महत्त्वका काम कर सकता है और नहीं। परिशीलन अभ्यास सर्व शिरोमणी है। वह अयोग्यको योग्य, मूर्खको विद्वान और आलसीको उद्यमी बना देता है। जो बोलनेकी योग्यता बचपनमें नहीं थी वह अब है, जो शैशव अवस्थामें अविचार था वह अब नहीं रहा और जो विद्या कुमार अवस्थामें जंजाल सरीखी मालूम देती थी उससे अब प्रेम होता है। कहनेका अभिप्राय यह कि जो योग्यता चाहिये वह अभी मुझमें नहीं है परंतु संभव है—वह काम

करनेसे कुछ दिनोंके वाद स्वयं आ जायगी। दूसरे सहायक भी योग्यता वढानेके कारण होते हैं। जव कि आप सरीखे जातिहितैषी और अनुभवी विद्वान मेरी सहायता करेंगे और हरतरह मेरी योग्यता के वढानेकी कोशिश करेंगे तव क्यों न मैं अपना अभीष्ट-सिद्धकर सकूंगा? मनुष्य चाहे योग्य हो या अयोग्य, कर्तव्यशील हो या अकर्मण्य, वह उचित सहायताके मिलनेसे और कामके करनेसे अवश्य योग्यता सम्पादन कर सकता है। यही विचार कर मैं भी जितना कुछ हो सकेगा, जैसे हो सकेगा उसी तरह जाति सेवा करना सीखूंगा—उसका अभ्यास करूंगा। मुझे पूर्ण आशा है कि मैं इस परिशीलनसे अपनी इच्छानुसार अच्छीं तरह अपने कार्यको सिद्धकर सकूंगा। परन्तु हां धीरे २ न कि एक दम। इस लिये खाली-हाथ वैठे रहनेसे कुछ न कुछ हाथ हिलाते रहना अच्छा है। उससे भी जातिको थोड़ा वहुत लाभ पहुंचनेकी संभावना है। मनुष्यकी शारीरिक और मानसिक शक्तियोंका वढ़ना अभ्यासके ही आधीन है। यह ऊपर लिखा जा चुका है। नीतिकारोंका भी यही कहना है कि—

तत्तन्मात्रकृताभ्यासैः साध्यते हि समीहितम्।

अर्थात्—हमें जो काम करना हो उसे उत्साहपूर्वक करना चाहिये वह नियमसे सिद्ध होगा। आइये पाठक! हम लोग भी जातीय कामको उत्साहके साथ करनेका संकल्प करें। संभव है इस महत्त्वके काममें आरंभमें त्रुटियां रह जाँय। इस लिये हम जातिके हितैषी सज्जनोंसे प्रार्थना करते हैं कि वे उन त्रुटियोंकी समय २ पर हमें सूचना देनेकी कृपा करें जिससे हम अपनी

सुधारणा करते जाँय। पाठक! यह काम किसीके घरका नहीं है, किन्तु जातीय और धार्मिक है। इसमें लेखक लेखोंसे, धनिक धनसे, अनुभवी अपने सद्विचारोंसे और उपदेशक जगह २ इसके प्रचार करनेकी कोशिशसे अर्थात् जिससे जिस तरह हो सके वह उसी तरह इस जातीय पत्रकी सहायता करें। और जो न विद्वान हैं, न धनिक हैं, न विशेष अनुभवी हैं न उपदेशक हैं और न लेखक ही हैं, ऐसे हितैषी अपने शारीरिक श्रमसे आस पासके शहरों और गांवोंमें जैसे हो सके इस पत्रका प्रचारकर सहायता करें। तात्पर्य यह कि सभी सज्जनोंको इस कार्यमें उपयोग देना चाहिये। क्योंकि जो काम सार्वजनिक होते हैं उन्हें अकेला पुरुष नहीं चला सकता। यह किंबदन्ती आज भी प्रसिद्ध है कि—

पांच जनेकी लकड़ी, एक जनेका बोझ।

हम इतिहासोंको देखते हैं तो स्पष्ट मालूम होता है कि जिन कामोंमें सबने मिलकर उपयोग दिया है, वे नियमसे पूर्ण हुये हैं और जिन्हें दूसरोंकी सहायतासे बञ्चित रहना पड़ा है, वे कार्य थोड़े ही दिन चलकर नष्ट हो गये हैं। हम दूर क्यों जाय? अपनी जातिकी ओर ही क्यों न लक्ष्य दें? जिस समय हमारी जातिमें मिलकर काम करनेकी प्रथा जारी थी, उस समय सारा संसार प्रायः जैन सुना जाता था और जबसे यह पवित्र प्रथा नष्ट हो गई तभी से हमारी दशा कैसी बिगड़ती चली है वह हमारी आखोंके सामने है! यदि अब भी हम न सोचें—मिलकर काम करना न सीखें तो कहना होगा कि अभी हमारा अच्छा भविष्य योजनोंकी दूरीपर है।

भाइयो! जब मिलकर काम करना सीखोगे तब ही अपनी उन्नति कर सकोगे।

## पत्रसे मेरा सम्बन्ध।

सभाने इस पत्रका भार मुझे सौंपा है। मुझसे जहांतक हो सकेगा मैं इसके सम्पादन करनेमें किसी तरहकी त्रुटि नहीं करूंगा। इस पत्रसे मेरा सम्पादकीय सम्बन्ध रहेगा। इसके द्वारा जो हानि अथवा लाभ होगा उसकी मालिक सभा है। मैंने यह काम अपने हाथमें किसी प्रकारकी आर्थिक सहायताकी इच्छासे नहीं लिया है और न मेरी यह इच्छा है कि इसे मैं किसी तरहकी सहायता लेकर करूं। अपनी जातिकी सेवा करना प्रत्येक पुरुषका कर्तव्य है। इसी विचारसे मैं भी इस कार्यके लिये सभाकी आज्ञा शिरोधार्य कर कार्य क्षेत्रमें उतरनेका साहस करता हूं। मङ्गलमय परमात्मा मुझे इस काममें जातीय सेवा करनेमें सहायता दें जिसके द्वारा मैं अपना कर्तव्य पालन कर सकूं।

## धन्यवाद।

जिन सज्जनोंने पहिले ही इस पत्रको आर्थिक सहायता दी है, उन्हें हम हृदयसे धन्यवाद देते हैं और साथ ही जातिके हितैषियोंसे प्रार्थना करते हैं कि वे इस पत्रकी सहायता कर अपनी उदारताका परिचय दें। सहायकोंके नाम अन्यत्र मुद्रित हैं।

## सहयोगियोंसे प्रार्थना।

यह नव जात शिशु अभी अपनेमें उतनी योग्यता नहीं रखता है कि जो सहयोगियोंके चित्तको किसी तरहका आनन्द दे सके। परन्तु हाँ यह संभावनाकी जा सकती है कि यदि इसे सहयोगियोंकी पवित्र

संगति सदा मिलती रहेगी तो जरूर कुछ न कुछ उत्तम गुण इसमें भी आजावेंगे क्योंकि—

गुण सङ्गतिसे ही प्राप्त होते हैं। इस लिये सहयोगियोंको उचित है कि वे अपने इस छोटे मित्रको अपनाकर सदा इसे अपने पवित्र दर्शनसे आनन्दित करते रहें। यह समझकर इससे उपेक्षा न करें कि अभी यह नव जात है और न अभी इसमें योग्यता ही है। बड़े वे ही कहे जाते हैं जो दूसरोंको अपने समान बनानेकी कोशिश करते हैं। आशा है कि सहयोगी वर्ग अपने इस नवमित्रकी प्रार्थना पर ध्यान देकर अपने दर्शन देते रहेंगे।

## ग्राहकोंसे प्रार्थना।

पत्रोंकी उन्नति ग्राहकोंपर निर्भर रहती है। जिस पत्रके जितने अधिक ग्राहक होते हैं वह अपनी उन्नतिमें उतना ही आगे होता जाता है। भारतवर्षका अभी दौर्भाग्य है जो उसमें उत्तम २ पत्रोंका जन्म होता भी है परन्तु उन्हें यथेष्ट ग्राहक न मिलनेसे वे जल्दी ही अपनी लीला सम्बरणकर लेते हैं। जब कि दूसरे देशोंमें अन्त्यज, कुली और मजदूर आदि भी बड़े उत्साहसे पत्र मंगाकर उनसे लाभ उठाते हैं, उस हालतमें हमारे देशमें पढ़े लिखे मनुष्य भी पत्र नहीं पढ़ते यह कितने खेद और आश्चर्यकी बात है? जो लोग किसी समय बिलकुल अजान थे और जिन्हें अपने रहन सहनतकका कुछ ज्ञान न था, वे आज पत्रोंके प्रभावसे किस योग्यतापर पहुंच गये हैं यह हमारी आखोंके सामने हैं। यह देखकर भी हम सचेत न होंवे—पत्र प्रचारमें सहायता न दें तो सचमुच ही हम बड़े अभागे हैं।

भारतवर्षकी सब जातियोंसे तुलना करनेपर जैन जाति और भी अधिक अज्ञानान्धकारमें डूबी हुई जान पड़ती है, उसमें नित्य नई २ कुरीतियाँ जन्म लेती जाती हैं, ज्ञानके प्रचारका कोई यथेष्ट मार्ग नहीं है और अज्ञानके कारण दिन दूने अत्याचार और अनर्थ बढ़ते जाते हैं। उनके दूर करनेका कोई उपाय नहीं किया जाता। ऐसी हालतमें जैनियोंका क्या कर्तव्य है उसके जाननेकी बड़ी भारी जरूरत है। कर्त्तव्यके ज्ञान करानेका एक मात्र साधन पत्र है। जैनी भाई जबतक पत्रोंका आदर नहीं करेंगे—उनका जातिमें प्रचार नहीं करेंगे तबतक अपनी उन्नतिकी उन्हें आशा छोड़ देनी होगी। जैनियोंको सचेत हो जाना चाहिये और अपनी जरूरतोंको जानकर उनका जातिमें प्रचार करना चाहिये।

यह पत्र खास इसी गर्जसे निकाला गया है कि वह अपने भाइयोंको जगावे। अब इसकी आर्थिक दशाका सुधार करना यह बात ग्राहकोंपर निर्भर है। ग्राहकोंको कुछ अपनी गिरती हुई जातिकी अवस्थापर विचार करना चाहिये और उसकी उन्नतिका मार्ग बतानेवाले इस पत्रको अपनाना चाहिये। हम आशा करते हैं कि वे इस जातिसेवकका आदरकर अपनी हितैपिताका परिचय देंगे और इसके ग्राहक बढ़ानेकी जी जानसे कोशिश करेंगे।

## खण्डेलवालोंका संक्षिप्त इतिहास और उनकी वर्तमान परिस्थिति।

इस समय जैनियोंकी जितनी जातियां हैं उन सबमें खण्डेलवालोंकी संख्या सबसे कहीं अधिक है। खण्डेलवाल वर्तमानमें राजपूताना,

मालवा और दक्षिणमें अधिक पाये जाते हैं। इनके सिवाय और प्रान्तोंमें भी इनका थोड़ा बहुत निवास है। इनका असली निवास राजपूतानाके अन्तर्गत खण्डेला शहर और उसके अधीनस्थ गावोंमें था। समय और अपनी जरूरतके अनुसार ये इधर उधर जा वसे हैं। यही कारण है जो इस समय खण्डेलवाल, प्राय सब प्रान्तोंमें पाये जाते हैं। इनके इतिहासके बाबत यों कहा जाता है कि—

"खण्डेला नामका जयपुरके अन्तर्गत एक बड़ा भारी शहर था। उसके राजाका जन्म चौहानवंशमें हुआ था। खण्डेलाके आधीन और भी ८४ गांव थे। एक समय दुर्भाग्यवश खण्डेलामें महामारी फ़ैल गई थी। उससे अपनी प्रजाको असमयमें कालके मुहँमें पड़ती हुई देखकर राजाको बड़ दुःख हुआ। उसने ब्राह्मणोंको बुलाकर पूछा कि, महाराज! प्रजाका यह घोर उपद्रव कैसे शान्त हो सकेगा, इसका कुछ आप उपाय बतावें? उत्तरमें ब्राह्मणोंने कहा कि स्वामी! आप नरमेध यज्ञ करवाइये। उससे इस उपद्रवकी शान्ति हो जायगी। ब्राह्मणोंकी यह बात सुनकर राजाने यज्ञमें बलि देनेके लिये एक मनुष्यके ढूंढलानेको अपने नौकरोंको भेजे। मसानमें एक दिगम्बर मुनि ध्यानमें खड़े हुये थे। नौकरोंने उन्हें लेजाकर यज्ञशालामें खड़ेकर दिये और अच्छे २ सुन्दर भूषणवस्त्रादि पहना कर उनके ललाटमें तिलक कर दिया। ब्राह्मणोंने वेदमंत्र पढ़कर बड़ी शीघ्रतासे हवनकुण्डमें मुनिकी आहुति डाल दी। मुनिकी बलि दिये जानेपर भी माहामारी शान्त न होकर अधिकाधिक बढ़ने लगी। यह देखकर राजा और भी बहुत दुखी हुआ। वह अपनी गरीब प्रजाकी घोर यंत्रणा न सह सकनेके कारण

गश खाकर पृथिवीपर गिर पड़ा। उसे उसी अवस्थामें एक स्वप्न आया। स्वप्नमें उसने उन मुनिको देखा जो कि होमे गये थे। कुछ देर बाद उसकी नींद खुली। वह अपने कर्मचारियोंको साथ लेकर वनमें गया। राजाके वनमें पहुँचनेके कुछ ही समय पहले श्रीजिनसेनाचार्य अपने पाँचसौ शिष्योंके साथ उस वनमें आ विराजे थे। उन्हें देखकर राजाको बड़ी खुशी हुई। वह मुनिके पावोंमें गिरकर उनसे बोला कि, हे महाराज! मेरे देशमें भयंकर उपद्रव क्यों हो रहा है? और यह कैसे मिटेगा? उत्तरमें जिनसेनाचार्य बोले—राजा! इस समय तेरी प्रजा बड़ी कुमार्गपर चल रही है। वह जीवोंकी हिंसा कर उसमें धर्म समझती है। अर्थात् धर्मके बहानेसे जीवोंकी हिंसा कर उससे अपने कल्याणकी चाह करती है और मांस मदिराका सेवन करती है। इसी अत्याचारसे ये महामारी आदि घोर उपद्रव बढ़ रह हैं। इन उपद्रवोंकी शान्तिके लिये मुनिका होम कर तूने और भी भारी अनर्थ किया है। तू खूब समझ कि, जीवहिंसाके समान संसारमें और कोई भारी पाप नहीं है। इसका विशेष फल अभी तुझे मालूम नहीं देता है। परन्तु परलोकमें जानेगा कि हिंसाका फल कैसा विषम भोगना पड़ता है। तू अपने हृदयमें कुछ तो विचार करता कि, कहीं हिंसा करनेसे भी धर्म हुआ है? जैसा तुझे अपना जीव प्यारा है, वैसा ही दूसरे जीव भी तो अपने जीवको प्यारा समझते हैं। एक छोटेसे कांटेके लग जानेसे अपने शरीरमें जैसी असह्य पीड़ा होती है वैसी ही बेचारे निरपराध पशुओंके गलेपर छुरी चलानेसे क्या उन्हें न होती होगी? देख तोः—

म्रियस्वेत्युच्चमानोपि देही भवति दुःखितः ।
मार्यमाणः प्रहरणैर्दारुणैर्न कथं भवेत् ॥

अर्थात—जव अपनेको कोई इतना ही कहता है कि तू मरजा, तब भी हम दुखी होते हैं फिर जिन जीवोंके गले छुरियोंसे काटे जाते हैं वे क्या दुःखी न होते होंगे ? इसे तू ही विचार । मुनिका हितकर उपदेश सुनकर राजाका हृदय दयासे पसीज गया । उसे अपने इस घोर अनुष्ठानका अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ । उसने हाथ जोड़कर मुनिसे पूछा कि, हे आनाथोंके नाथ! मैंने बहुत बुरा कर्म किया है । अब आप कुछ उपाय बतलाइये जिससे इस घोर पापसे मेरा पल्ला छूट जाय । आप दयालु हैं और सब जीवोंके हित करनेवाले हैं । इस लिये मुझे पूर्ण आशा है कि, मुझ अभागेका भी आप भला करेंगे । आचार्यने कहा—राजा! तू यदि अपनी भलाई चाहता है तो दयाधर्म स्वीकार कर और तुझसे जहातक हो सके उसका खूब प्रचार कर । जब तेरी प्रजाके चित्तमें दया देवी आकर विराजेगी और सारी प्रजा जीवमात्रको अपने समान समझेगी तब ये उपद्रव, बातकी बातमें मिट जावेंगे । इसपर विश्वास कर । मुनिके कहे अनुसार राजाने दया-धर्म स्वीकार किया और उपद्रवकी शान्तिके लिये शान्तिविधान करवाया, दीन दुःखियोंको खूब दान दिया । कुछ दिनतक ऐसा करनेसे सब उपद्रव मिटकर प्रजा सुखी हुई । राजाको मुनिके वचनोंमें और भी दृढ़ विश्वास हो गया । उसने अपने राज्यभरमें यह आज्ञा प्रचारित कर दी कि मेरी प्रजा दयाधर्म अङ्गीकार करे । उसे कभी किसी जीवका वध नहीं करना चाहिये । राजाज्ञाके अनुसार उसकी चौरासी गांवोंकी रहनेवाली चारोंवर्णकी प्रजाने दयाधर्म स्वी-

कार किया। इन चौरासी गावोंके जैसे नाम थे वैसे ही खण्डेलवालोंके चौरासी गोत्र कहलाये। वे ही गोत्र आजतक चले आते हैं।"

यह खण्डेलवालोंका संक्षिप्त इतिहास है। इससे यह सिद्ध होता है कि, उस समय खण्डेलाकी चारोंवर्णकी प्रजा खण्डेलवाल नामसे प्रसिद्ध हुई। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारोंवर्णमें अभी भी खण्डेलवाल पाये जाते हैं। क्षत्रिय खण्डेलवाल हम लोग हैं। हमारी आजकल वैश्योंमें ही गणना होती है। कारण बहुत दिनोंसे हमारी वृत्तिका परिवर्त्तन हो गया है। यह परिवर्त्तन कब और कैसे हुआ? इस विषयमें हमें कुछ ज्ञान नहीं है। अब इस जातिकी—

## वर्तमान परिस्थिति—

पर विचार करते हैं। इस शताब्दिके पहले इस जातिमें अच्छे २ विद्वान् और महात्माओंने अवतार लिया है। उनमें प्रायः विद्वान् और परोपकारियोंने अपना पवित्र जीवन जातिके उपकारार्थ अर्पण किया है। यहां तक कि कितनोंको तो अपने जीवनकी बलि तक दे देनी पड़ी है। जैनधर्मका ऐसे नररत्नोंकेद्वारा असीम उपकार हुआ है। जैन जाति आज उनके ऋणसे दब रही है। उन्होंने जितने काम किये हैं वे सब जातिकी भलाईके लिये किये हैं। परन्तु खेद होता है कि, आज हम लोग अपने पूर्वजोंकी सब बातोंको भूल कर उलटे मार्गपर चल रहे हैं। हमें इस बातका स्वप्नमें भी ख्याल नहीं होता कि, जिन्होंने अपनी जाति और अपने धर्मके लिये जीवन तक उत्सर्ग कर दिया था, हम भी तो इस समय अपनी अधःपतित जातिकी कुछ सेवा कर अपने शिरपरका ऋण (कर्ज) उतारें और अपना मुख उज्ज्वल करें। किसी समय हम क्षत्रिय थे। क्षत्रियोंका खून बड़ा जो-

शीला होता है। परन्तु आज हम उन्हींकी सन्तान होकर भी अकर्मण्य हो रहे हैं। हमारी यह हालत क्यों? हमारे खूनमें वह तेजी क्यों नहीं? हममें एकदम इतनी अकर्मण्यता क्यों हुई? इन बातोंपर विचार करनेसे स्पष्ट जान पड़ता है कि, हमारे पूर्वज ज्ञानी थे और ज्ञानके साथ ही उनमें शारीरिक बल भी अपार था। आलस और विलासिता उनका स्पर्श भी नहीं करने पाई थी। इसी लिये वे कर्मवीर कहे जाते थे। उनमें संसारभरके उपकार करनेकी शक्ति थी और उनकी मानसिक शक्ति भी बढ़ी चढ़ी थी। जिस जातिका आलस और विलासिता पल्ला पकड़ लेते हैं, वह जाति फिर सहसा उठ नहीं सकती। एक समय भारतवर्षमें यवनोंका अखण्ड राज्य हो गया था। सारे देशमें कुछ हिस्सेको छोड़कर सर्वत्र उनकी विजय वैजयन्ती फहराने लग गई थी। परन्तु जैसे ही उनमें विलासिता घुसी कि उनका अधःपात आरंभ हुआ। इसी विलासिताने समय समयपर क्षत्रियोंको भी बड़ी बड़ी विपत्तियोंमें डाले हैं। विलासिता मनुष्यको अकर्मण्य बना देती है और अकर्मण्य (आलसी) होते ही उसका अधःपात आरंभ हो जाता है।

हमारी जातिमें धनिक वर्गकी कमी कभी नहीं रही यह शास्त्रोंके देखनेसे स्पष्ट ध्यानमें आ जाता है। यही धन सब अनर्थोंका मूल है। संभव है कि एक वह दुर्दिन हमारी जातिके लिये आया होगा जिस दिनसे हमारी जातिमें शिक्षा देवीकी आराधना कम होकर उसकी जगह विलासिताने आदर पाया। वही हमारे अधःपातका आरंभ दिन है। इसी विलासितासे अकर्मण्य होकर हम सब भूल गये, हमारे खूनकी तेजी सर्वथा नष्ट हो गई, अपने पूर्व-

जोंकी कर्त्तव्यताका हमें ध्यान तक नहीं, हम उनके कितने कर्जदार हैं इसकी हमें कुछ फिकर नहीं, हमने किस लिये जन्म लिया है इसका हमें कुछ ज्ञान नहीं, इस समय हमारी और हमारे भाइयोंकी क्या हालत है ? इस पर विचार करनेका हमें अवकाश नहीं और अब हमारा कर्त्तव्य क्या है ? इसकी हमें कुछ चिन्तातक नहीं । इन सब बातोंका हृदयमें विकाश क्यों नहीं होता ? इसका कारण क्या है ? विचार करनेपर यह अनुभवमें आता है कि—

शिक्षाका अभाव—

ही हमारे अधःपातका मूल हेतु है। आज जैनजातिमें और २ जातिकी अपेक्षा खण्डेलवालोंकी संख्या सबसे अधिक है और धनिक लोगोंकी भी इस जातिमें कुछ कमी नहीं है। परन्तु केवल एक शिक्षाके न होनेसे इसकी स्थिति जितनी भयंकर है उतनी शायद ही और जातियोंकी होगी। इसी शिक्षाके नष्ट हो जानेसे जातिके नष्ट होनेके जितने कारण हैं वे सब इसमें अपना पैर अच्छी तरह जमाये हुये हैं। उनकी संख्या घटनी तो दूर रही उल्टी दिन दूनी और रात-चौगुनी बढ़ती ही जाती है।

आज इस उन्नतिके जमानेमें शिक्षाकी बहुत कुछ प्रगति हो रही है। जिन जातियोंके पास पैसा नहीं है वे भी शिक्षाकी उपयोगिता जान कर अपनी जातिमें हर तरहसे शिक्षाके बढ़ानेका उपाय कर रही हैं। देशके नेता आज इस बातपर जोर दे रहे हैं कि भारतवर्षकी उन्नतिका एक मात्र उपाय शिक्षा है। जबतक देशमें पूर्ण शिक्षाका प्रचार न होगा अर्थात्—देशका बच्चा २ शिक्षित न हो जायगा तबतक हम कभी उन्नतिकी आशा नहीं कर सकते। यह बात सचमुच ही ठीक

है। विद्याकी अधिकता हमारी उन्नतिका कारण और उसकी अल्पता अवनतिका कारण है। जापान और अमरीका इस बातके उत्तम उदाहरण हैं। यदि ये देश शिक्षाकी ओर ध्यान नहीं देते तो कभी संभव नहीं था कि आज ये संसारके आदर्श होते? पूर्वकालमें भारतवर्ष सब देशोंका आदर्श रहा है, यह बात इतिहाससे स्पष्ट विदित होती है। नालन्दाके विश्वविद्यालयमें दूर २ देशके लोगोंने आकर विद्याध्ययन किया है। परन्तु आज तो भारतवर्षको अपने आदर्श दूसरे देश बनाने पड़े हैं। इसी लिये कि अब वह पूर्वकी हालत उसकी नहीं रही। शिक्षाशैलसे एक साथ ही उसका अधःपात हो गया। इसी अधःपातसे देशका पुनरुद्धार करने के लिये अब देशके विद्वानोंका लक्ष्य शिक्षाकी ओर आकृष्ट हुआ है। जगह २ स्कूल कॉलेज खोलनेके प्रयत्न किये जा रहे हैं। यह देशके लिये शुभ लक्षण है। देशमें विद्याकी इतनी प्रगति होनेपर भी आश्चर्य और खेद होता है कि हमारे भाइयोंकी गहरी नींद अभीतक नहीं टूटी है। आलसने अभीतक उनका पल्ला नहीं छोड़ा है। वे शिक्षाकी उपयोगितासे निरे अनभिज्ञ हैं। उनकी यह नींद कब खुलेगी? कब वे आलसको शत्रु समझ कर उससे अपना पल्ला छुड़ावेंगे? कब वे अपनी जातिकी हालतपर ध्यान देंगे और कब वे अपनी सन्तानके उद्धारका उपाय करेंगे? नहीं मालूम कब वह सुदिन हमारी जातिके लिये आवेगा जिस दिन हमारे भाई इस पतित जातिका उद्धार करनेके लिये बद्ध परिकर होंगे?

भाइयो! अब भी बहुत कुछ उन्नति की जा सकती है। उठो! आलससे अपना पल्ला छुड़ाकर जातिके उद्धारका काम हाथमें लो। आपकी सन्तान ज्ञानके विना मारी २ फिर रही है, उसके भलाईका उपाय सोचो। जरा नीतिकारके इस कथनपर भी मीमांसा करो कि—

परिवर्त्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ॥

इस संसारमें कौन तो मरता नहीं और कौन उत्पन्न नहीं होता ? परन्तु उत्पन्न होना उसीका कार्यकारी है जिसने जन्म लेकर अपनी जातिकी उन्नति की ।

आज कल खण्डेलवालोंकी संख्या कमसे कम एक लाखके अनुमान होगी । उसमें उनकी सन्तानें चौथाई हिस्सा जरूर ही होंगी । हम अपने भाइयोंसे यह प्रश्न करें कि, आपने अपनी सन्तानोंके भविष्यकी क्या चिन्ता की है ? तो वे क्या उत्तर देकर हमारे मनकी तुष्टि करेंगे ? वे माता पिता नहीं जिनने अपनी सन्तानके लिये मङ्गल कामना न की । वे उसके पक्के दुश्मन हैं । यह कितने खेदकी बात है कि, अपनी विलासिताके लिये करोड़ों रुपये पानीकी तरह बहा दिये जावें और सन्तान सुधारके लिये कुछ परवा न की जाय जिनके ऊपर कि जाति और देशका पूर्ण भार है । एक विचारशीलका कथन है कि, जिस देशका और जिस जातिका भविष्य तुम्हें जानना हो तो सबसे पहले उस देशकी और उस जातिकी सन्तानोंको देखो । तुम्हें जिसकी सन्तानें अधिक बली जान पड़े समझ लो कि वही देश और वही जाति अपनी उन्नति कर सकेंगे । और जिस देशकी वा जिस जातिकी सन्तानें दुर्बल हैं, अकर्मण्य हैं, वह देश और वह जाति कभी उन्नति नहीं कर सकते । इस दुनियांपर वही बहुत दिनतक टिक सकता है जो बलवान है । जब हम अपने जातीय-सन्तानोंको देखते हैं तो वह इतनी दुर्बल और कमजोर दीख पड़ती है कि उससे किसी प्रकारकी उन्नतिकी शुभ आशा नहीं की जा सकती । फिर हम यह कैसे न

कहें कि, हमारी जातिकी इस समय परिस्थिति बड़ी भयंकर है। हम यह भी नहीं कह सकते कि हमारी जातिके पास पैसा नहीं है। इस लिये वह अपनी सन्तानोंके शिक्षाका उचित प्रबन्ध नहीं कर सकती। जितना रुपया आज खण्डेलवाल जातिका और २ कामोंमें खर्च होता है जैनियोंमें और जातिका शायद ही उतना रुपया खर्च होता होगा। इन सब बातोंका यही तत्त्व निकलता है कि, अभी हमारे जातिके सज्जन विद्याकी उपयोगिता नहीं समझे हैं। इसका यह कारण कहा जा सकता है कि वे स्वयं भी विद्यावान नहीं हैं। क्योंकि विद्वान् पुरुष अपनी सन्तानके सुधारकी अवश्य चिन्ता करता है और जिस तरह हो उसी तरह अपने आखोंके तारेको कभी मूर्ख नहीं रहने देता। धनवानोंको किसी तरहकी कमी नहीं रहती, यदि वे चाहें तो अपनी प्यारी सन्तानको अच्छीसे अच्छी और उत्तम दर्जेकी शिक्षा देकर उसे गुणी बना सकते हैं। परन्तु वे स्वयं ही जब नहीं पढ़े तब क्यों अपनी सन्तानोंको पढ़ाने चले? इसी लिये आज प्रायः देशके धनवानोंकी सन्तानें निरी मूर्ख रह जाती हैं। हमारे बहुतसे धनियोंके चित्तमें एक और बुरी वासना स्थान पा गई है। वह यह है—उनका खयाल है कि पढ़नेका असली उद्देश्य नौकरी करना है सो हमें कौन अपनी सन्तानोंसे नौकरी करवानी है? इस लिये ऊंचे दरजेकी विद्या नहीं पढ़ानी चाहिये। हमारे यहां इतना धन है कि हमारी सन्तानें कई पीढियों तक उसे बैठी २ भोगें तब भी उसका छोह नहीं आनेका।

यह विचार पूर्ण अज्ञता भरा हुआ है। जातिके कुछ अभागे पुरुषोंको पढ़कर नौकरी करते हुये देखकर पढ़नेका नौकरी करना

ही उद्देश्य है यह समझ लेना नितान्त भूल है। हम यह बात जोरके साथ कहते हैं कि जो पढ़करके व्यापार करता है, वह उससे कई गुणा-लाभ उठा सकता है जो कि एक अपढ़ व्यापार करके लाभ उठाता है। हमलोगोंकी विद्या पूर्ण नहीं होती। कुछ थोड़ासा ज्ञान हुआ कि हम अपने दिलमें यह समझ लेते हैं कि बस हम पढ़कर विद्वान हो गये और फिर इस कच्ची हालतमें हमें सिवाय नौकरीके दूसरा उपाय नहीं सूझता। हमारी आशायें तो पढ़ते समयहीसे बढ़ने लगती हैं, हर समय दृष्टि पैसेकी ओर रहती है। पैसा कमाया जाता है, परन्तु वह रीतिसे। कमानेका यह अर्थ नहीं कि, लोभमें पड़कर जैसे हो वैसे ही हाय पैसा, हाय पैसा, करने लग जाँय। इससे हमारी उन्नति न होकर फिर हमें उसी दशामें अपने जीवनको सड़ाना पड़ता है। यदि हम पूर्ण विद्वान होते तो हमें इस तरह पैसा कमानेकी नहीं सूझती। जैसे आज अंग्रेज, जापानी, अमेरिकन लोगोंके मगजमेंसे नित्य नये आविष्कार निकलते हैं वैसे ही हमारे मगजमेंसे निकलते। मनुष्य जब अपनी पूर्ण योग्यतापर पहुँच जाता है तब वह जो चाहे उसे कर सकता है। उसके लिये फिर कोई कार्य बाकी नहीं रह जाता जिसे वह न कर सकता हो। हमारे ग्रन्थोंमें मोक्षको अत्यन्त कठिन साध्य बतलाया है, उसे भी जब मनुष्य प्राप्त कर सकता है तब साधारण उन्नतिके काम क्योंकर उससे नहीं हो सकेंगे?

पढ़कर निकले कि हमारी प्रवृत्ति नौकरीकी ओर अधिक झुकती है, उसका एक कारण और है। वह यह कि हमारी शिक्षाशाला-ओंमें हमें ऐसी शिक्षा नहीं दी जाती कि जिससे हमें पठनावस्थाहीमें

इस पराधीन वृत्तिसे घृणा होने लगे। हमें केवल शास्त्रीय विषय ही पढ़ा दिये जाते हैं जिनसे सिवाय उनकी बातोंके और कुछ नहीं सूझता। व्यावहारिक कामोंमें स्फूर्ती नहीं होती। आज बनारसके संस्कृत पढ़नेवाले दश हजार विद्यार्थियोंकी हालत देखी जाय तो वे व्याकरण और न्यायादिकी तो डिगरीकी डिगरियां पास कर डालते हैं परन्तु उनसे किसी व्यावहारिक कामके लिये कहा जाय तो संभव नहीं कि वे उचित रीतिसे उसका सम्पादन कर सकें। यदि इन्हीं दशहजार विद्यार्थियोंको शास्त्रीय विषयोंके साथ अपनी लौकिक उन्नतिका भी मार्ग बतलाया जाय तो उनसे जाति तथा देशको बहुत लाभ पहुँच सकता है। परन्तु इस ओर किसीका लक्ष्य ही नहीं जाता। यही हालत हमारी जातिकी भी है। पहले तो हमारी जातिमें ऐसी भारी संस्थाएं ही नहीं हैं जिनके द्वारा विद्याप्रचारकी पूर्ण आशा की जाय और कुछ हैं भी तो उनके अध्यक्षोंको विद्यार्थि-योंके भविष्य जीवनकी चिन्ता नहीं है। यह कितने खेद की बात है?

भाइयो! विद्या पढ़नेका न तो यह उद्देश्य है कि पढ़कर नौकरी की जाय और न पढ़ानेका यही अर्थ है कि केवल शास्त्रीय विद्या ही पढ़ाई जाय। पढ़ो और पढ़ाओ पर उसी रीतिसे जिसे पढ़कर नौकरीके लिये लालायित न होना पड़े और अपनी उन्नतिका स्वतंत्र रास्ता निकाला जा सके। अपनी उन्नतिसे केवल हमारा यही मतलब नहीं है कि अपना ही पेट पाला जावे, किन्तु हृदयमें यह उदारता होनी चाहिये कि हमने अपनी जाति अपने देश और अपने धर्मकी उन्नतिके लिये पढ़ा है न कि केवल अपनी स्वार्थ साधनाके लिये। मनुष्यजीवन संकीर्णताका घर नहीं है। सोमदेव के वचनानुसार—

अयं लघुर्महानेष न चिन्तातत्त्ववेदिषु ।
नद्याः पूरप्रवाह्यन्ति समं नीरतृणद्रुमाः ॥

अर्थात्—विद्वानोंका हृदय ऐसा अनुदार नहीं होता कि यह छोटा है और यह बड़ा, किन्तु उनके लिये संसारके जीवमात्र समान हैं। जैसे नदीके प्रवाहमें तृण और बड़े २ वृक्ष एक ही साथ बहे चले जाते हैं। यही जैन धर्मका मूल सिद्धान्त है। इसी पर हमें चलना चाहिये।

यह हम बता चुके हैं कि शिक्षाके ऊपर ही हमारी उन्नति निर्भर है। शिक्षाके बिना हम कभी उन्नत नहीं हो सकते। हमारे भाई शिक्षाकी उपयोगिताको कभी नहीं समझे हैं। इसीसे उनकी प्रवृत्ति शिक्षाकी ओर नहीं झुकी है। विद्या पढ़नेका उद्देश्य नौकरी करना नहीं है। इन सब बातों पर हमारे भाइयोंको मनन करना चाहिये। इसके बाद उन्हें संसारकी प्रगति देखकर अपनी जातिकी हालत और उसकी जरूरतोंपर ध्यान देना उचित है। हमें अब और कामोंमें धनके खर्च करनेकी जरूरत नहीं है। अगणित रुपया बिना जरूरतके भी हम खर्च कर चुके। अब हमें अपनी सन्तानोंके सुधारका भी उपाय करना चाहिये। यदि अब भी सन्तानोंके सुधारका कुछ उपाय न किया जायगा तो एक दिन वह आवेगा जिस दिन हमारी प्यारी सन्तान गली २ मारी फिरेगी, उसे कोई कौड़ीके भाव भी नहीं पूछेगा। क्योंकि यह जमाना विद्याका है, इसमें धन उतना काम नहीं देगा जितना कि विद्या। दूसरे धनका विश्वास ही क्या? वह आज है कल नहीं। विद्या अपूर्व धन है इसका कभी नाश नहीं होगा। इसकेद्वारा हमारी सन्तान जन्मभर सुखी होगी।

भाइयो! उठो!! आलस और विलासिता छोड़कर अपनी जातिकी

अवस्था सुधारो। उसका भला होनेहीसे तुम्हारा भला होगा। यह निस्सन्देह है। जिसने अपने जाति भाइयोंको सुखी नहीं किया—उनके दुःखमें हमदर्दी न दिखाई वह मनुष्य नहीं किन्तु मनुष्यपर्यायमें पशु है।

## उचित शिक्षा।

अपनी, अपने धर्मकी, अपनी जातिकी और अपने देशकी उन्नति सभी चाहते हैं और सभी उसके उपाय भी करते हैं, फिर भी उनकी आकाङ्क्षाएँ पूरी होती नहीं दीख पड़तीं। इसका कुछ कारण जरूर होना चाहिये। विचार करनेपर ज्ञान पड़ता है कि, हमारे उपायोंमें त्रुटिया रह जाती हैं और इसीसे हम कृतकार्य नहीं होते। यदि उपायोंमें त्रुटियां न होतीं तो अवश्य हमारी आकाङ्क्षाएं पूर्ण होतीं। वहुतसे मनुष्य अपनी त्रुटियोंपर तो ध्यान नहीं देते—उनके निकालनेकी कोशिश नहीं करते और कार्यको सदोष वना डालते हैं। यह उनकी भूल है। हमें सबसे पहले अपनी कार्य प्रणालीपर ध्यान देना चाहिये। क्योंकि जिसने कारणोंमें त्रुटियां ढूंढ निकाली हैं समझ लो कि, वह अपना कार्य भी अवश्य सिद्ध कर सकेगा।

* * * * * *

हम किसी कार्यका आरंभ करते हैं और जरा ही कुछ उसमें विघ्न आपड़ता है तो उसे यह कह कर कि, कार्यके प्रारंभमें ही अशकुन हो गये छोड़ वैठते हैं। यह हमारी नितान्त भूल है और इसी भूलने आज हमारी गणना डरपोक और आलसियोंमें करा रक्खी है। हमें यह मंत्र विदेशियोंसे सीखना चाहिये कि—

कार्यं साधयेयं वा शरीरं पातयेयम्।

या तो प्रारंभ किये हुये कार्यको पूर्ण करेंगे, या उसके पीछे अपने शरीरसे भी हाथ धो वैठेंगे। परन्तु डरपोक होकर कार्यसे मुँह नहीं

मोड़ेंगे। यही दृढ़ संकल्प विदेशियोंकी उन्नतिमें पूर्ण सहायक हुआ है। हम भी यदि अपनी उन्नति चाहते हैं तो हमें उक्त पवित्र महामंत्र अपने हृदयमन्दिरमें विराजमान करना चाहिये।

* * * * * *

संसारमें ऐसा कोई असंभव काम नहीं है जो मनुष्योंसे न किया जा सके। एक वक्त नेपोलियन बोनापार्टको अपनी सारी सेना बर्फसे ढके हुये विशाल पर्वतपरसे पार करके शत्रुओंसे युद्ध करना था। यदि वह अपने विश्वासके अनुसार पर्वतपरसे सेनाको निकाल ले जा सके तो शत्रुओंके दांत खट्टे कर सकता है। इसके विरुद्ध शत्रुओंका विश्वास था कि, एक नेपोलियन क्या किन्तु उसके सरीखे सैंकडों नेपोलियन भी इस पर्वतको पार नहीं कर सकते। अर्थात्—इसका पार करना सर्वथा असंभव है। नेपोलियनकी सेना भी अपने सेनापतिके इस विश्वासको अच्छा नहीं समझती थी। नेपोलियन बड़ा कुशाग्रबुद्धि और वीर पुरुष था। उसका कहना था कि, मैंने आजतक फ्रेंचभाषामें असंभव शब्द नहीं सुना, फिर इस पर्वतका पार करना भी असंभव नहीं हो सकता। आखीरमें उसने अपनी बुद्धिकी चतुरतासे पर्वतको पार करके छोड़ा। उसे इस तरह एक असंभव काममें सफलता प्राप्त करते हुये देखकर शत्रु दंग रह गये, उन्हें दांतोंमें अंगुली दबाना पड़ी।

प्रत्येक मनुष्यको यह बात पूर्ण ध्यानमें रखनी चाहिये कि, आत्मा अनन्त शक्तियोंका स्थान है। इस लिये संसारमें कोई ऐसा असंभव कार्य नहीं है जिसे यह न कर सके। हां इतना जरूर है कि, कितने कार्य साधारण उपाय साध्य होते हैं और कितने कठिन। परन्तु हैं सब संभव। हमें नेपोलियनके चरित्रसे शिक्षा लेनी चाहिये

कि, हमारे काममें चाहे कितने ही विघ्न बाधायें क्यों न उपस्थित हो जॉय उसे पूरा करेंगे— अधूरा नहीं छोड़ेंगे ।

* * * * * *

जो काम देश कालके विचारपूर्वक किया जाता है उसके सफल होनेकी भी आशा की जा सकती है और जो कार्य संसारकी प्रगति-पर ध्यान न देकर किया जाता है उससे न तो उसके करने-वाले ही कुछ लाभ उठा सकते हैं और न ऐसे कामोंसे जाति व देशको किसी तरहका फायदा पहुंच सकता है । क्योंकि—

**तो पुष्पावचयः शक्यः फलकाले समागते ।**

**अर्थात्**—वृक्षोंपर फल लग जानेपर फिर उससे फूल इकट्ठे नहीं किये जा सकते । इसी तरह जो समय जिस कामके करनेका है उसमें उसी कामको करना चाहिये । हमारी जातिमें इस बातकी बड़ी कमी है कि, वह अभी समयकी कद्र करना नहीं जानती और इसीसे यह संसारकी सब जातियोंसे पीछी पड़ी हुई है। जातिके हितैषियो ! विचार करो कि अब जातिमें इस समय किस बातकी कमी है ? जिसके न होनेसे यह अपनी उन्नति नहीं कर सकी और फिर उस कमीके मिटानेका उपाय करो । यही आपका सबसे पहला कर्त्तव्य है ।

* * * * * *

**अहिंसा परमो धर्मः** यह पवित्र सिद्धान्त जैनधर्मकी नींवका मजबूत पाया है, इसी पायेके आधारपर जैनधर्म ठहरा हुआ है और इसीसे उसने **सत्वेषु मैत्री** अर्थात्—जीवमात्रसे मित्रता करो, यह कह कर अपनेको संसारभरका बन्धु बतलाया है । परन्तु जबसे इसके

ज्ञानका मध्यान्हकालीन सूर्य ढल चुका है और अज्ञानांधकारकी राज्य सीमा बढ़ने लगी है तबसे इसके धारण करनेवालोंमें उदारताकी जगह संकीर्णताने अपना अचल स्थान बना लिया है। अब हमारा कर्त्तव्य है कि इस ज्ञान विकाशके जमानेमें कुछ कार्यकरके एक वक्त फिर भी यह सिद्ध कर बतादें कि जैनधर्मका सिद्धान्त वसुधैव कुटुम्बकम् है, और हम उसी उदार सिद्धान्तके धारक सच्चे जैनी हैं।

* * * * * *

हम यह नहीं कहते कि, छोटे २ जीवोंपर दया नहीं करनी चाहिये। चाहे छोटा जीव हो अथवा बड़ा, हमारे लिये सब अनुकम्पाके पात्र हैं। परन्तु यह दया करना तब उत्तम दया कहला सकती है जब हमारे संकीर्ण और कलुषित हृदयमें उदारता और दूसरोंके दुःख दूर करनेकी इच्छाको स्थान मिले। हमें अपने देशके और जातिके उन भाइयोंके घोर दुःखपर कुछ करुणा करनी चाहिये कि, जिन्हें एक वक्त भी भरपेट खानेको नहीं मिलता है। जैन धर्ममें एकेन्द्री द्वीन्द्रिय आदि उत्तरोत्तर जीवरक्षाको अधिक २ महत्त्व दिया गया है। परन्तु खेद है कि, आज हमारी प्रवृत्ति इससे बिल्कुल विरुद्ध है। नहीं मालूम जैन धर्मका वह सौभाग्यसूर्य फिर कब उदय होगा जिस दिन उसके उजेलेमें सब जीव सबको अपने बराबर समझने लगेंगे ?

## सम्पादकीय विचार।

सार्वधर्म—प्रातःस्मरणीय स्या. वा. पंडित गोपालदासजीका लिखा हुआ ट्रेक्ट है। सार्वधर्मका अर्थ होता है— सबका हित करनेवाला धर्म। इस ट्रेक्टमें पंडितजीने जैनतत्त्वका समुचित

अच्छा विवेचन किया है। पंडितजीके ट्रेक्टमें एक और बड़े महत्त्वकी बात लिखी गई है। उससे पंडितजीके उदार और असंकीर्ण हृदयका पूर्ण परिचय मिलता है। वह यह है कि पंडितजीने अपने सारे ट्रेक्टमें जैन शब्दका कहीं भी उल्लेख नहीं आने दिया है। यदि विचार और अनुभवके साथ देखा जाय तो कहना होगा कि पंडितजीने यह ट्रेक्ट लिखकर जैनधर्मका बड़ा भारी उपकार किया है। इस सार्वजनिक कामसे हमारे बहुतसे सज्जनोंको एक भारी शंकासी होगई है। वे कहते हैं कि, पंडितजीने इस ट्रेक्टमें जैन शब्दका उल्लेख न कर संसारको धोखा दिया है, सो सचमुच ही पंडितजीने यह ट्रेक्ट लोगोंको धोखा देनेके लिये लिखा है या किसी अच्छे अभिप्रायसे? इसी विषयपर कुछ विचार करते हैं।

धोखेका अर्थ—अपनी कषायोंके आधीन होकर दूसरोंको ठगना होता है, इसे सभी स्वीकार करेंगे और जो दूसरोंकी भलाईकी इच्छासे सच्चा काम किया जाता है वह धोखा देना नहीं है। जब कि आज सारा संसार जैनियोंको घृणा दृष्टिसे देखता और—

" न पठेद्यावनीं भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि ।
हस्तिना पीड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम् ॥ "

अर्थात्—प्राण कण्ठगत भले ही हो जाँय परन्तु यवनोंकी भाषा नहीं बोलनी चाहिये और हाथीके पांवके नीचे दबकर प्राण दे देना कहीं अच्छा है, परन्तु जैनियोंके मन्दिरमें जाना अच्छा नहीं। इसपर सबका विश्वास है। उस हालतमें पंडितजीने अपने ट्रेक्टमें जैन शब्दका उल्लेख यदि न भी किया तो क्या बुराईकी बात हुई

और इसमें पंडितजीने संसारको धोखा देकर कौनसा अपना स्वार्थ साधन कर लिया, जिसके लिये वे ऐसी लाञ्छनाके पात्र बनाये जावें। पाठक! जरा विचारिये तो, एक बच्चा कुवेमें गिरना चाहता है, उसे उसके माता पिता सीधे शब्दोंमें मना करते हैं। परन्तु वह उनके वचनोंको न मानकर उलटा कुवेमें गिरनेके लिये तयार होता है। ऐसे कठिन समयमें यदि उसके माता पिता दूसरे शब्दोंमें किसी तरहका लोभ वगैरह देकर उसे बचालें तो क्या वे उसे धोखा देते हैं या उसके भलाईकी इच्छा करते हैं ?. एक हठी बीमार कड़वी दवा खाना पसन्द नहीं करता। परन्तु कड़वी दवासे उसके आराम होनेकी आशा है। उस हालतमें यदि कोई चतुर वैद्य वा डाक्टर उसे मीठी वस्तुके साथ साथ वह कड़वी दवा भी खिला-दे तो क्या वह उसे धोखा देता है अथवा उसके आराम करनेकी कोशिश करता है? और उस कड़वी दवासे जो उसे आराम होगा वह उसके लिये अच्छा है या बुरा? उसी तरह पंडितजीने भी यदि यह विचार कर कि, जैनधर्मसे कोई घृणा न करे और सबकी समझमें उसका ठीक ठीक स्वरूप आजाय जैनतत्त्वका दूसरे शब्दोंमें विवेचन किया—अपने भाइयोंकी भलाईके लिये सुपथका मार्ग बतलाया तो उसमें उन्होंने क्या महापाप कर डाला? जिससे यह कहा जाय कि, पंडितजीने संसारको धोखा दिया। मेरी समझके अनुसार इसे कोई जातिहितैषी धोखा नहीं कहेगा?

कल्पना कीजिये कि—पंडितजीके ट्रैक्टको देखकर एक महाशय जैनी हो गये। इसे दूसरे शब्दोंमें यों कहिये कि, वे जैन महाशय पंडि-तजीके धोखेमें फँस गये। अब जो जैनधर्मके ग्रहण करनेसे उनका

कल्याण होगा वह उनके लिये अच्छा हुआ या बुरा ? यदि अच्छा हुआ कहा जाय तो फिर पंडितजीको धोखा देनेवाला न कहना चाहिये। क्योंकि उन्होंने यह काम दूसरोंके हितके लिये किया है। न कि किसीको धोखा देकर अपना स्वार्थ साधनेके लिये। और यदि बुरा कहा जाय तो कह देना होगा कि जैनधर्म कल्याणका मार्ग नहीं है। पंडितजीका धोखा देना तो तब कहा जाता जब कि वे जैनधर्मके विरुद्ध पदार्थोंका विवेचन करके और दूसरोंकी हांमें हां मिलाकर उन्हें अपनी ओर झुकाते ? परन्तु ऐसा न कर पंडितजीने तो खुलासा उसमें जैनतत्त्वका विवेचन किया है। इसे भी हम धोखा देना कहें तो यह हमारी गुणग्राहकताका पूर्ण परिचय है। धन्य !

भावो हि पुण्याय शुभः पापाय चाशुभः।

जैनधर्मका सिद्धान्त परिणामोंपर निर्भर है। जो काम अच्छे अभिप्रायोंसे और दूसरेकी भलाईकी इच्छासे किया जाता है वह फिर किसी रूपमें किया जाय बुरा नहीं हो सकता। और बुरे-कलुपित अभिप्रायोंसे जो काम किया जाता है वह फिर भले ही अच्छा क्यों न हो परन्तु जैनधर्म उसे कभी अच्छा नहीं कहेगा। अब पाठक भी जरा पंडितजीके परिणामोंकी जांच करें कि सचमुच ही पंडितजीने संसारको धोखा दिया है या उसके मङ्गलकी इच्छा कर अपनी उदारता और निःस्वार्थताका परिचय दिया है ?

पंडितजी! आप महात्मा हैं, निःस्वार्थताके ज्वलन्त आदर्श हैं। परन्तु अभी आपका दैव आपसे दुश्मनी कर रहा है। यही कारण है—जो जातिका हित करते हुये भी आपको हम हितैपी नहीं कहते। आप हमारे लिये, हमारी जातिके लिये और हमारे पवित्र धर्मके लिये एकवक्त

चाहे अपना सर्वस्व भी क्यों न खो बैठें-अपने प्यारे प्राणोंकी बलि क्यों न देदें तब भी आपके उन्नत विचारों और उदार गुणोंको हमारे कलुषित और संकीर्ण हृदयमें स्थान नहीं मिलनेका—उनका आदर नहीं होने का। क्योंकि अभी हममें पात्रता नहीं है जो निःस्वार्थ जातिहितैषीका आदर करें। इसे हम अपना दौर्भाग्यके सिवाय और क्या कह सकते हैं?

* * * * * *

जैनधर्म—संसारमें शान्तिका राज्य चाहनेवाला धर्म है, उसमें जहां तहां शान्ति लाभ करनेका उपदेश दिया गया है और शान्ति लाभ करना जीवमात्रका कर्तव्य है। जैनधर्मकेद्वारा अगणित आत्माओंने शान्ति लाभकर अपने जीवनका उद्धार किया है और जो शुद्ध हृदयसे इसे अपनाता है वह नियमसे शान्ति सुखका साम्राज्य प्राप्त करता है। यह समयका प्रभाव है जो हम उसी पवित्र धर्मको धारण करते हैं, तब भी हमें शान्ति नहीं मिलती। दिनों दिन हृदय, कलुषित और घृणित वासनाओंका स्थान बनता जाता है। कषायें हमें ठोकरोंसे ठुकराती हैं, खूब घायल करतीं हैं और जैनधर्मके पवित्र सिद्धान्तसे विचलित कर नीचे २ गिरा रहीं हैं। परन्तु फिर भी हमें अपने बुरे विचारोंपर घृणा नहीं होती। हो कैसे? क्योंकि—

रक्तेन दूषितं वस्त्रं न हि रक्तेन शुद्ध्यति।

अर्थात्—खूनसे भरा हुआ कपड़ा खूनसे कभी नहीं धोया जा सकता। उसी तरह हम कषायोंकेद्वारा अपनी कषायें मिटाना चाहते हैं, सो वे कैसे मिट सकेंगी? कषायें शान्ति लाभसे मिटेंगीं। भाइयो!

फ़िर इसे प्राप्त करनेका उपाय क्यों नहीं करते? परन्तु ध्यान रहे शान्ति दिखौवा न हो।

* * * * * *

पंडित दुर्गादत्त शर्माका पत्र नीचे मुद्रित है। उसमें वे फिर अपनेको जैनी हुआ वताते हैं। परन्तु हमें ऐसे चञ्चलवृत्ति पुरुषके ऊपर विश्वास नहीं होता कि वे सचमुच जैन हो गये होंगे। उनका घड़ी २ पर तरह २के रङ्ग वदलना ही हमारे इस अविश्वासका कारण है। हमारा पंडितजीसे कहना है कि वे अपने हृदयकी लालायित वासनाओंको पहले दूर करें। इसके वाद उन्हें अपना मत परिवर्त्तन करना चाहिये। तव ही वे विश्वासके पात्र हो सकेंगे।

* * * * * *

पं. अमोलकचन्द्रजीने फिरोजपुरके अधिवेशनकी रिपोर्ट हमारे पास छपनेको भेजी है। हम आपके आभारी हैं। उसका सार अन्यत्र दिया गया है।

## एक सन्यासीका आग्रह और मेरी भूल।

स्याद्वादवारिधि पं. गोपालदासजी और स्वामी दर्शनानन्दजीके शास्त्रार्थके दूसरे दिन ता. १ जुलाई सं. १९१२ को मुझे स्वामीजीने बुलाया था। मैं उनके बुलानेके अनुसार आर्यभवनमें गया था। वहां स्वामीजीने दुःखभरेशब्दोंमें आग्रहके साथ मुझे दवाया और मुझसे **जैनधर्म परित्याग** नामक विज्ञापन प्रकाशित करनेको कहा। उस समय मेरे प्रियबन्धु गणपति शर्माका स्वर्गवास हो जानेसे मेरा चित्त अत्यन्त व्याकुल हो रहा था। इस लिये उनकी बातें मुझपर

असर कर गई, और मैंने भी अपना हिताहित कुछ भी न विचार कर विज्ञापन निकाल दिया।

मैं सत्य कहता हूं कि, मेरे उक्त विज्ञापनके प्रकाशित करनेमें पंडितजी और स्वामीजीका शास्त्रार्थ बिल्कुल कारण न था। शास्त्रार्थमें तो पंडितजीने बड़ी प्रबल युक्तियां दी थी। उनका उत्तर स्वामीजीसे नहीं दिया गया था।

संसारमें वक्त २ पर ऐसे अनेक कारण आ जाते हैं, जिनसे मनुष्य व्याकुल होकर अनुचित कार्य भी कर बैठता है। प्रियपात्रके वियोगने मुझसे भी अनुचित कार्य करा दिया। परन्तु जब चित्त कुछ स्वस्थ हुआ तब मैंने विचारा तो मुझे जान पड़ा कि किसीके दबावमें पड़ कर सत्यधर्मका परित्याग करनेसे आत्माका अकल्याण ही होता है। इसलिये मैं सर्व साधारणसे निवेदन करता हूं कि, मुझे अपने पूर्व प्रकाशित विज्ञापनका बड़ा भारी खेद और पश्चात्ताप है। अपनी भूलसे छोड़े हुये धर्मको मैं पुनः सहर्ष ग्रहण करता हूं।

ता. १ अगस्त १९१२. पं० दुर्गादत्त शर्म्मा, अजमेर.

## नियमावली–

महाराष्ट्र खंडेलवाल दिगम्बर जैन पंच महासभाकी।

१। इस सभाका नाम महाराष्ट्र खंडेलवाल दिगम्बर जैन महासभा है।

२। इसके उद्देश इसप्रकार हैं –

(क) खंडेलवालजातिमें विद्यावृद्धि करना।

( ख ) कुरीतियोंको उठाकर सुरीतियोंका प्रचार करना ।

( ग ) परस्परके पंचायती झगड़े मिटाना ।

( घ ) व्यापारकी उन्नतिके नये नये उपाय सोचना ।

( ङ ) धर्मस्थानोंका योग्य प्रबंध कराना ।

( च ) अनाथोंकी रक्षा करना ।

३ । खंडेलवाल जातिके समस्त भाई जो कि १८ वर्षकी उमरसे कम नहीं हैं इसके सभासद समझे जांयगे ।

४ । प्रत्येक गांवकी पंचायतीके सभासदोंको चाहिये कि वे अपनी अपनी पंचायतीमेंसे एकसे चारतक समझदार मुख्य २ पंचोंको चुनकर इस सभामें प्रतिनिधि बना कर भेजें । वे ही प्रतिनिधि इस महासभामें अपने अपने गांवकी पंचायतकी तरफसे हरएक प्रस्तावमें सम्मति दे सकते हैं ।

५ । यदि किसी गांवकी पंचायतके प्रतिनिधिके सिवाय अन्य सभासद इस महासभामें कोई प्रस्ताव पेश करना चाहें तो वे पांच भाईयोंकी सही कराकर अधिवेशनसे १५ दिन पहले पेश करें, उसपर विचार किया जायगा ।

६ । प्रत्येक गांवके जो प्रतिनिधि नियत होंगे उनकी संख्या ३१ से ७५ तक होगी । उनमेंसे कमसे कम ११ गांवके २१ प्रतिनिधिके हाजिर होजानेसे सभाका अधिवेसन पूरा समझा जायगा और सब प्रस्ताव बहु सम्मातिसे पास होंगे । समानपक्षमें सभापतिकी दो सम्मति समझी जांयगी ।

## मैनेजिंग कमेटी ।

७ । इन ही प्रतिनिधियोंमेंसे ११ से २१ प्रतिनिधियोंकी एक

मैनेजिंग कमेटी नियत की जायगी। इनमेंसे ७ सभासदोंके हाजिर होनेसे वा पत्रद्वारा मत आनेसे भी प्रस्ताव बहुमतसे पास हुआ करेंगे।

८। इन ११ सभासदोंमेंसे एक सभापति, एक उपसभापति, एक मंत्री और एक कोषाध्यक्ष, ऐसे ४ कार्याध्यक्ष समस्त प्रतिनिधियोंकी बहुसम्मतिसे प्रतिवर्ष नियत होते रहेंगे। ये ही महाशय मैनेजिंग कमेटीसे पास हुये प्रस्तावोंके अनुसार सब कार्य करते रहेंगे।

९। सभापतिका कार्य यह है कि वह समस्तकार्योंकी देख रेख करे।

१०। उपसभापतिका कार्य यह है कि सभापतिकी हाजिरीमें सभापतिकी आज्ञानुसार सब कामोंकी देख रेख करे और उसकी गैर-हाजिरीमें बिना आज्ञा भी सब कार्योंकी देख रेख करे।

११। मंत्रीके कार्य ये हैं–( १ ) सभाके दफ़तरमें आये हुये तथा नये २ प्रस्ताव पेश करे, ( २ ) पास हुये प्रस्तावोंका प्रचार करे, ( ३ ) सभाकी तरफसे प्रत्येक पंचायती व प्रतिनिधियोंसे सर्व प्रकारका पत्र व्यवहार करे, ( ४ ) सभासम्बंधी आमदनी खर्चका समस्त हिसाब रक्खे, ( ५ ) वार्षिक रिपोर्ट तयार करके प्रकाशित करे, ( ६ ) वार्षिक वा नैमित्तिक अधिवेशनकी एक महीने पहले समस्त प्रतिनिधियोंको और पंचोंको सूचना भेजकर अधिवेशनका प्रबंध करे, ( ७ ) पास हुये बजटके अंदर २ खर्च करे ( ८ ) और अधिक खर्च करनेकी जरूरत हो तो मैनेजिंग कमेटीसे आज्ञा लेकर करे।

१२। कोषाध्यक्षका कार्य यह है कि वह बजटके अंदर २ खर्चके लिये मंत्रीको जो रुपये चाहिये सो दे।

१३। यदि नियमावलीमें कुछ फेरफार करना हो तो वार्षिक अधिवेसनके समय मैनेजिंग कमेटीमें कर सकते हैं।

१४। प्रत्येक पंचायतीसे जो २ प्रतिनिधि चुने जाँयगे वे तीन वर्षके लिये चुने जाँयगे। तीन वर्ष बाद फिरसे चुनाव हुआ करेगा। इसी बीचमें किसी प्रतिनिधिके परलोक होनेपर या पंचायती नियमसे विरुद्ध कार्रवाई करने आदि कारणोंसे किसी जगहकी पंचायती किसी प्रतिनिधिकी जगह दूसरा प्रतिनिधि नियत करना चाहें तो महासभाके दफ़तरमें अर्जी पेश करनेसे मैनेजिंग कमेटी अगर योग्य समझेगी तो स्वीकार कर सकती है।

१५। सभाके दफ़तरका काम चलानेके लिये प्रत्येक प्रतिनिधिके बदले एक २ रुपया फीसका प्रत्येक पंचायतीको प्रतिवर्ष भेजना होगा। अगर किसी पंचायतीकी फीस नहीं आयगी तो वार्षिक अधिवेशनपर योग्य समझा जायगा सो किया जायगा।

प्रकाशक—केवलचंद खुशालचंद।

## सत्यवादीके सहायक।

| | | |
|---|---|---|
| | ५१) | श्रीयुक्त भट्टारक देवेन्द्रकीर्त्तिजी, कारंजा |
| * | ३५१) | ,, श्यामलालजी ओंकारदासजी काशलीवाल, खामगाव |
| * | ५१) | ,, शान्तिदासजी लक्ष्मणदासजी, पूना |
| * | ५१) | ,, फूलचन्द्रजी पद्मराजजी, कलकत्ता |
| | ५१) | ,, गुलाबचन्दजी गंगवाल, धूलिया |
| | ५१) | ,, तोतारामजी चुन्नीलालजी, जलगांव |
| | ५१) | ,, रोड़मलजी मेघराजजी, सुसारी |
| * | २१) | ,, मोहनलालजी गंगवाल, बालोद |
| * | २१) | ,, ताराचन्द्रजी सोनी, श्रीगोंदे |
| * | १५) | ,, श्यामलालजी छोटीलालजी, मासडोंगरी |

| | | | |
|---|---|---|---|
| | १५) | ,, | श्यामलाल पूरवलालजी, नेरी |
| * | ११) | ,, | पं. पन्नालालजी काशलीवाल, बम्बई |
| | ११) | ,, | चन्द्रभानजी काला, अमरावती |
| * | ११) | ,, | माणिकचन्द्रजी वैनाड़ा, बम्बई |
| * | ११) | ,, | राजमलजी बड़जात्या, बम्बई |
| * | ११) | ,, | शिवलालजी श्यामलालजी, चांदवड़ |
| | ११) | ,, | पेमराजजी मगनीरामजी ओसवाल, जलगांव |
| | ११) | ,, | पन्नालालजी, पाल्दी |
| | ९) | ,, | गुलाबचन्द्रजी, खामगांव |
| * | ७) | ,, | वंसीलालजी, विनायक्या |
| | ७) | ,, | लक्ष्मणदासजी, सोनी |
| | ७) | ,, | केसरीमलजी छावड़ा, मलकापुर |
| | ७) | ,, | चम्पालालजी, नेरी |
| | ७) | ,, | सुन्दरलालजी, जलगांव |
| | ५) | ,, | रंगनाथजी, श्रीगोंदे |
| | ५) | ,, | पन्नालालजी काला, खामगांव |
| | ५) | ,, | खुशालचन्दजी कन्हैयालालजी, खामगांव |
| | ५) | ,, | भाऊलालजी पाटनी, मलकापुर |
| | ५) | ,, | जगरूपजी मोहनलालजी, सिवनी |
| | ४) | ,, | वंसीलालजी, पलासखेड़ |
| | २) | ,, | कस्तूरचन्द्रजी, जामोद |

( शेष फिर )

खुशालचन्द्र सहायक मंत्री.

---

नोटः—जिननामोंके ऊपर * ऐसा चिह्न लगा है वह रकम अभी वसूल नहीं हुई है।

## सामाजिक समाचार ।

अजमेरमें ता. २८ ई. १२ से जैनकुमार सभाका वार्षिक सम्मिलन था । उसपर प्रातःस्मरणीय श्रीयुक्त स्या० वा० पंडित गोपालदासजी, कुँवर दिग्विजयसिंहजी और वा० चन्द्रसेनजी मंत्री आदि जातिके हितैषी पधारे थे । विद्वानोंके समागमसे सम्मिलन खूब धूम-धामसे हो गया । सर्व साधारण पर जैनधर्मका अच्छा प्रभाव पड़ा । ता. ३० जूनको स्वामी दर्शनानन्दजीके साथ वारिधिजीका सृष्टिका कर्त्ता ईश्वर नहीं हैं इस विषयपर तीन घण्टे तक शास्त्रार्थ हुआ । पंडित दुर्गादत्त शर्म्माके पत्रसे जाना जाता है कि पंडितजीकी प्रवल युक्तियोंका स्वामीजी उत्तर नहीं दे सके ।

ता. ६ जुलाईको पं. मानिकचन्द्रजी और पं. यज्ञदत्त शर्माका उक्त विषय पर ही संस्कृत भाषामें शास्त्रार्थ हुआ । सुनते हैं कि, संस्कृत भाषाके वोलनेमें शर्म्माजी पंडितजीकी वरावरी नहीं कर सके थे । शास्त्रार्थका खुलासा परिणाम सम्मिलनकी रिपोर्टसे जाना जा सकेगा । रिपोर्ट तयार हो रही है । शीघ्र ही प्रकाशित होगी । यह देखकर वड़ा खेद हुआ कि, विज्ञापन दोनों ओरके मर्यादाको उल्लंघन किये हुये वटते थे ।

* * * * * *

व्यावरके भाई वड़े आग्रहके साथ वारिधिजीको अपने वहा लिवाले गये थे । पब्लिक व्याख्यान हुये । जैनधर्मकी अच्छी प्रभावना हुई । जातिके हितैषियोंका नया उत्साह देखकर चित्तमें वहुत आनन्द होता है । क्या ही अच्छा हो यदि प्रत्येक प्रान्तमें ऐसे ही उत्सव कराकर जैनधर्मकी प्रभावना की जाय ?

* * * * * *

फिरोजपुर छावनीमें जुलाई ता. २०।२१।२२ को श्री जीवदया प्रचारक जैनसभाका वार्षिक अधिवेशन खूब धूमधामके साथ हो गया। इस अवसरपर बम्बई, जयपुर, इटावा, देवबन्द, लाहौर देहली और मुलतान आदि शहरोंके सज्जनोंके अतिरिक्त ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी, बाबू सूर्यभानुजी वकील, बा. अर्जुनलालजी सेठी बी. ए., कुँवर दिग्विजयसिंहजी, बा. जुगलकिशोरजी और बा. चन्द्रसेनजी वैद्य आदि जातिके सञ्चालक सज्जन भी पधारे थे।

सभामण्डप बहुत सुन्दरताके साथ सजाया गया था। उसपर जहां तहां **अहिंसा परमो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः** की अपूर्व ही शोभा दीख पड़ती थी। ता. २० को बड़ी धूमधामसे नगर कीर्त्तन हुआ। उसमें मुलतान, फिरोजपुर और ऐनी मेल्स फ्रेन्ड सोसाइटीकी भजन मण्डलियोंके चित्ताकर्षक भजनोंसे सर्व साधारण पर जीवदया-का बड़ा भारी असर पड़ता था। ता. २१।२२ को सभाकी चार बैठकें हुईं। पहली बैठकके सभापति लालचन्द्रजी रईस फिरोजपुर हुये थे और शेष बैठकोंके श्रीयुक्त ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी हुये थे। व्याख्याता—कुँवर दिग्विजयसिंहजी, ब्रह्मचारीजी, बा. अर्जुन-लालजी, बा. प्रभूरामजी और बा. जुगलकिशोरजी थे। अहिंसा धर्मपर आप लोगोंके अच्छे प्रभावशाली व्याख्यान हुये। सभाओंमें हिन्दू, मुसलमान, और सिख आदि सभी आते थे। दयादेवीका असर सर्व साधारणके चित्तपर खूब पड़ता था।

इसी अवसरपर जीवदयाप्रचारक सभाकी ओरसे श्रीयुक्त कुँवर दिग्विजयसिंहजीको सन्मान पत्र अर्पण किया गया था।

इसके अतिरिक्त आनेवाले सज्जनोंके स्वागत और ठहराने वगै-

रहका अच्छा प्रबन्ध किया गया था । परमात्माकी कृपासे अधिवेशन अच्छी तरह समाप्त हो गया । उत्साही भाइयोंको बधाई है ।

* * * * * *

श्रीयुक्त पूज्य त्यागी ऐलक पन्नालालजी महाराजका चतुर्मास झालरापाटनमें हो रहा है । आसपासके भाइयोंको महाराजके दर्शन करनेके लिये अवश्य जाना चाहिये । हमारी जातिका आपहीसे आज मुख उज्ज्वल है । आप उत्कृष्ट श्रावकवृत्तिके धारक हैं । आपका परीषह जय बड़ा ही विलक्षण है । धन्य! महाराज!!

* * * * * *

वड़नगर ( मालवा ) कुछ दिन हुये यहां शंकराचार्यके एक उपदेशक महाशय आये थे । उन्होंने अपने व्याख्यानमें यज्ञमें की हुई हिंसा हिंसा नहीं होती । इस विषयका प्रतिपादन वेद और स्मृतियोंकेद्वारा किया था । इस पर मीमांसा न कर हम कहनेकी बात कहते हैं । दूसरे दिन रातको जैनियोंकी ओरसे सुप्रसिद्ध उपदेशक कस्तूरचन्द्रजीका व्याख्यान हुआ । उसमें उन्होंने यह बात बतलाई कि वेद वगैरहमें हिंसाका विधान है । इसलिये वे मानने योग्य नहीं हैं । क्योंकि हिंसामें धर्म माननेसे जीवोंका कल्याण न होकर अकल्याण होता है । यह व्याख्यान कुछ कठिन शब्दोंको लिये हुये हुआ था । अच्छा होता यदि यही विषय शान्तिके साथ कहा जाता । इसपर हमारे बहुतसे अन्यधर्मी भाइयोंको बुरा लगा । यदि उपदेशकजीका कहना उन्हें रुचिकर नहीं हुआ था तो उचित था कि उसका अपने पंडितोंद्वारा प्रतिवाद करवा देते । ऐसा न कर उपदेशकजीके व्याख्यानमें बाधा डाली, हल्ला मचा दिया और जैनियोंको मन मानी सुनाई, यह अच्छा नहीं किया ।

जैनियोंने इस मोकेपर शान्तिका आश्रय लेकर बड़े मोकेका काम किया। यदि इस समय वे अपने वीतरागताके सिद्धान्तको भूल जाते तो सचमुच इसके प्रायश्चित्तमें उन्हें हमारे भाइयों की लकड़ियोंके निशाने बनना पड़ता। हमें इस बातकी खुशी है कि यह मामला इतनेहीमें शान्त हो गया।

* * * * * *

**अपमान या मान**—ऊपरके मामलेमें बुरे शब्दोंकी बोछारें सुनना हमारे कितने भाइयोंको सहन नहीं हुआ। वे इससे अपना घोर अपमान समझकर उन सज्जनोंको फटकार बतलाने लगे जो इस धार्मिक मामलेमें अग्रसर होकर व्याख्यान वगैरहके दिलवानेकी कोशिश करते थे। परन्तु उनकी यह समझ ठीक नहीं है। उन्हें ध्यान रखना चाहिये कि, सच्चे कामके करनेसे जो आपत्तियां उठानी पड़ती हैं, दूसरेका तिरस्कार सहना पड़ता है और अनेक तरहके कुवाच्य सुनने पडते हैं इनसे अपमान नहीं होता। अपमान होता है बुरे कामोंके करनेसे। यदि इसे ही अपमान कह दिया जाय तो बताइये कि निष्कलंक स्वामीने जो एक सच्चे कामके लिये अपने प्राणोंकी बलि दे डाली थी उनकी आप क्यों प्रशंसा करते है ? अपमानित पुरुषकी प्रशंसासे लाभ ?

जैनधर्म शान्तिका आकर है। हमारा कर्त्तव्य है कि हमारे विरुद्ध कोई कितना ही उपद्रव क्यों न करे हमें वह शान्तिसे सहलेना चाहिये। क्योंकि—

ददतु ददतु गाली गालिमन्तो भवन्तः।

* * * * * *

**गौतमपुरा**—( इन्दौर ) कुछ दिन हुये यहां एक शंकराचार्यजी आये थे। उन्होंने अपने व्याख्यानमें जैनियोंको बौद्धोंकी शाखा और

नास्तिक कहा था। उसपर वहांके एक जैनी भाईने कुछ पूछनेके-लिये प्रार्थना की। परन्तु महाराजकी ओरसे वह प्रार्थना स्वीकृत नहीं हुई। उसी दिन शामको उक्त जैनी भाईने कुछ प्रश्न लिखकर आचार्यजीकी सेवामें उत्तर चाहनेकी इच्छासे भेजे। परन्तु फिर भी यह कहकर कि तुम्हें लिखकर पूछनेका कोई अधिकार नहीं है पश्न पत्र लौटा दिया गया। विद्वानोंका यह काम है कि जिज्ञासुओंकी शङ्काओंका समाधान करके उनका भ्रम दूर करें। अच्छा होता यदि आचार्य महाराज भी ऐसा ही करते।

* * * * * *

**धार्मिक व्याख्यान**—गौतमपुरामें वहांके जमादार महाशयकी अध्यक्षतामें दो दिन आमसभाएं हुईं। पहले दिन **जैनधर्मका किसी धर्मसे विरोध नहीं है और दूसरे दिन जैनधर्म नास्तिक और वौद्धोंकी शाखा नहीं है** तथा **मनुष्यजीवनका कर्त्तव्य** इन विषयोंपर उदयलाल काशलीवालने और **अहिंसा** इस विषयपर गेंदालालजी जैनने व्याख्यान दिये। सभामें पोष्ट माष्टर आदि अन्य सज्जन भी आते थे। भीड़ अच्छी हो जाती थी। यहांपर पन्नालालजी, जवरचन्दजी और रतनलालजी श्वेताम्बरी अच्छे उत्साही युवक हैं। धार्मिक कामोंको बड़े उत्साहके साथ करते हैं।

* * * * * *

**रतलाम ( मालवा ) जैन मन्दिरपर दि॰ जैनपञ्चायती मन्दिर** इस नामका साईनवोर्ड लगाया गया था। वह मन्दिरपरसे उतार दिया गया। इसी तुच्छ मामलेका परिणाम अदालतमें पहुँचा है। धन्य! जैनियो! तुम्हारी उन्नति इसीसें होगी? विस्तृत फिर।

# स्याद्वादग्रंथमाला
# और
# आदिपुराणजी ।

स्याद्वादग्रंथमालामें प्रथम ग्रन्थ श्रीसमंतभद्रस्वामीकृत **जिनशतक** भाषानुवाद सहित न्यो० ।।।) दूसरा **धर्मरत्नोद्योत** न्यो० १)रु० तृतीय **धर्मप्रश्नोत्तर** भाषा न्यो०२) रु० ये तीन ग्रंथ छप गये। तीसरे ग्रन्थका कुछ भाग अभी छपना बाकी है। अब श्री अमृतचंद्र सूरिकृत **तत्त्वार्थसार** अनुवाद सहित छपेगा। इनग्रन्थोंके सिवाय आदिपुराण मूल और सरल अनुवाद सहित खुले पत्रोंमें छप रहे हैं वे भी स्याद्वादग्रंथमालाके ग्राहकोंको हरमहीने पंद्रह पंद्रह फारम भेजे जायंगे। छोटे २ ग्रंथ पूरे और बड़े २ ग्रंथ दो तीन खंडमें जिल्द बंधाकर भेजे जाते हैं। एक फारम बड़े २ आठ पृष्ठोंका और छोटे २ सोलह पृष्ठोंका होता है सो इस ग्रंथमालाके ९० फारमकी न्योछावर ५) रु० तैयार ग्रंथोंका वी.पी. भेजकर पेशगी मंगा ली जाती है। डांक खर्च जुदा है सो अगले अंक दो दो आनेके वी. पी. से भेजे जाते हैं जिससे कोई अंक वा ग्रंथ डांकमें खोया नहीं जाता। पांच या छह अंकोंमें ९० फारम पूरे होते ही ५) रु० पूरे हो जांयगे तब अगला अंक फिर पांच रुपयोंके वी. पी. से भेजा जायगा। ९० फारम तकके शेष अंक डांक खर्चमात्रके वी. पी. से भेजे जाते हैं।

जो स्याद्वादग्रंथमालाके ग्राहक न बनकर आदिपुराण ही लेना चाहें तो उन्हें केवल आदिपुराणके ही ग्राहक बना सकते हैं। उनसे आदिपुराणकी भी न्यो० ९० फारमोंकी ५) रु० तैयार फारम भेज कर पेशगी वी. पी. से मँगा ली जाती है। फिर अगले अंक हर महीने (पंद्रह २ फारमके) डांक खर्चके दो दो आने वी. पी. केद्वारा भेजे जायंगे। ९० फारम पूरे हुये बाद फिर पांच रुपयोंके वी. पी. से अगले १५ फारम भेजे जायंगे। इसी हिसाबसे तीसरी बार जितने फारम बचेंगे उतनेका ही वी. पी. करके आदिपुराण पूरे कर दिये जांयगे।

अनुमान २५० फारमोंका यह महानग्रन्थ बड़े २ अक्षरोंमें छप रहा है।

जिनको आदिपुराणके ग्राहक बनना हो वे शीघ्र ही बन जांय। क्योंकि यह की० केवल २०० ग्राहकोंके लिये है। दो सौ ग्राहक हुये बाद इस न्योछावरमें आदिपुराण नहीं मिलेंगे। पहलेके सब नियम रद्द हैं। ता. १ अगस्त १९१२।

**पन्नालाल जैन बाकलीवाल**

स्याद्वाद रत्नाकरकार्यालय

सिटी।

ॐ

# सत्यवादी ।

सत्य एक अपूर्व रत्नाकर है, जो इसमें अवगाहन करते हैं, उन्हें अलभ्य रत्न प्राप्त होते हैं ।

प्रथम भाग. } आश्विन श्रीवीर नि. २४२९ विक्रम १९६९ { २ अंक

## क्षमा ।

पवित्र पर्व बीत गया । यह अपूर्व आनन्द भी अब वर्ष भरके बाद किसी पुण्यशालीको मिलेगा । ये दिन जिस शान्तिके साथ बीते हैं अब आगे भी यही शान्ति हमारे हृदयमें विराजी रहेगी यह संभव नहीं । क्योंकि अब हमें पीछा सांसारिक प्रपञ्चोंमें फँसना पड़ेगा ।

इस पर्वका अन्तिम दिन हमारे लिये बड़े महत्त्वका है । उस दिन वर्षभरका कलुषित—हृदय पवित्र होता है । शत्रुता भूलकर सब परस्परमें प्रेमके साथ आलिङ्गन करते हैं । भाईसे भाईका अपूर्व सम्मिलन होकर एकको एक छातीसे लगाता है । उस दिन हृदयमें जिस पवित्र भावका आविर्भाव होता है वह लिखा नहीं जा सकता । आइये पाठक ! आप हम भी गलेसे गले लगें और जातीय प्रेमकी सीमा बढ़ाकर परस्परमें पवित्र—हृदयसे क्षमा करावें और करें ।

———

# आत्मवलि।

आत्मवलिसे हमारा मतलब आत्महत्या करना नहीं है। आत्म-हत्या करना बुरा है—पापमय है और इसे सब बुरा कहते हैं। जिस आत्मवलिका हम जिकर करेंगे उसकी अपार महिमा है। उसे सर्व साधारण प्राप्त नहीं कर सकते। जो इस महान आत्मवलिके उपासक होते हैं वे सारे संसारके मनुष्योंके हृदयमन्दिरमें विराजमान होकर उनके आराध्य देवता होते हैं। जिन पूर्व पुरुषोंकी ख्याति हमें रुचती है, हम जिनके नामका बड़े प्रेमसे स्मरण करते हैं और जिनके हजारों वर्षोंके वीते हुये जीवनका हाल सुनकर हमें आज भी वैसा ही आनन्द होता है जैसा मानो उनके साक्षात्-जीवनका हाल ही देख रहे हैं। उन महात्माओंने—निष्काम योगि-योंने अपने आत्माकी वलि दी थी—दूसरोंके लिये अपने जीवनका अपूर्व उत्सर्ग किया था। इसीसे हमें उनका जीवनवृत्तान्त बड़ा अच्छा और हृदयग्राही जान पड़ता है। उसे पढ़ते २ आत्मामें एक अपूर्व भावका सञ्चार होता है।

आत्मवलि सबके लिये सहज नहीं है। जो भीरु हैं—जिनका उद्देश केवल अपने ही जीवनको सुखी बनाना है, उनके लिये तो यह और भी कठिन है—कठिन ही नहीं किन्तु असंभव है। आत्म-वलि वही दे सकता है, जिसकी मानसिक बुरी वासनाएं अपने जीवनके सुख दुःखकी कुछ परवा नहीं रखती, जो दूसरोंके दुःखमें दुखी और सुखमें सुखी होना ही अपने जीवनका कर्तव्य समझता है और जिसने अपने जीवनको आपत्तियोंकी कसोटीपर अच्छी तरह जांचकर सहनशील बना लिया है। क्योंकि उसे इस आत्मबलि

देनेमें बड़ी २ कठिनाइयां सहनी होंगी, दुःखपर दुःख भोगना होगा, सासारिक विनश्वर सुखको जलाञ्जलि देनी होगी, कुटुम्ब छोड़ना पड़ेगा, प्यारे पुत्र, पुत्री, स्त्री आदिको हृदयसे भुला देना होगा और यह पवित्र महाव्रत धारण करना होगा कि—

**अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।**
**उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥**

अर्थात्—संसारके जीव मात्र मेरे बन्धु हैं, कोई मुझसे भिन्न नहीं है, यह मेरा जीवन मेरे प्यारे बन्धुओंके लिये है, मैं उनकी प्राण-पणसे सेवा करूंगा—उनके दुःखके दूर करनेकी कोशिश करूंगा और जबतक वे सुखी न होंगे तबतक मैं भी सुख भोगना—सुखकी चाह करना नरकवास समझूंगा । भर्तृहरिने कार्यार्थी ( परोपकारी ) पुरुषके लिये क्या ही अच्छा उपदेश दिया है—

**क्वचिद्भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनं**
**क्वचिच्छाकाहारः क्वचदपि च शाल्योदनरुचिः ।**
**क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो**
**मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम् ॥**

ऐसे ही आत्मबलि देनेवालोंकी हमें जरूरत है । हमारी जाति आज ऐसे पुरुषोंके लिये—उन महायोगियोंके लिये एक टकटकी लगाये हुई है । हमारा पापमय स्वार्थ—जीवन उसे अच्छा नहीं लगता । उसे आशा नहीं कि हम सरीखे स्वार्थियोंसे उसकी कुछ भलाई होगी । वह अपने प्यारे पुत्ररत्न निष्कलङ्क, अमरचन्द्र और टोडरमल आदिके लिये आज आंखोंसे चौधारे आंसू बहाती है । उसे जब जब उनकी याद आती है तब तब

वह बड़ी दुखी होती है। उसे आशा नहीं कि अब मेरे लिये जीवनको उत्सर्ग करनेवाले ऐसे महात्माओंका अवतार होगा? परन्तु फिर भी आशा बड़ी बलवती होती है। वह एक वक्त मृत्युशय्या-पर पड़े हुये मनुष्यको भी कुछ देरके लिये रोक सकती है। ठीक आज हमारी जाति जननीकी—प्यारी माताकी भी यही हालत है। वह भविष्यकी आशासे ही निर्वाणोन्मुख दीपककी तरह जी रही है। अभी उसे आशा है कि वीरभगवानके आदेशानुसार कोई वीर पुत्र अवतार लेगा और वही मेरा इस दारुणदशासे उद्धार करेगा। यह आशा उसे मरनेसे रोक रही है। नहीं तो कभीकी उसने अपनी जीवनलीला सम्वरण करली होती।

हम कुपुत्र हैं, हमारा जीवन अपना ही भला चाहता है, उसे दूसरोंके—अपने भाइयोंके—दुःख सुखकी कुछ परवा नहीं है। इसी स्वार्थवासनासे हम अपनी—जाति जननीका उद्धार करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। यह हमारे लिये कितनी घृणा और लज्जाकी बात है कि जिसने हमें पैदा किया, पाला पोपा, और हमारे सुखके लिये जिसने अनेक तरहकी कठिनसे कठिन आपत्तियां सहीं—अपने प्यारे पुत्रों तकको जिसने कालके हाथ सौंप दिये उसका आज हम यह बदला चुका रहे हैं जो हम तो सुख भोगें-आराम करें और हमारी प्यारी माता हमारे ही सामने नरकयातना सहे? उसके प्यारे बालबच्चे—हमारे भाई बहन अन्नके एक २ कणके लिये तरसें—दूसरोंका मुहँ ताकें, फिर भी हमारा कठोर हृदय जरा भी नहीं पसीजता? वे शिक्षाके लिये मारे मारे फिरें और हमें कुछ लज्जा नहीं आती? क्या वे हमारे भाई नहीं है? वे और हम एक माताके पुत्र नहीं हैं?

फिर बेचारोंपर यह अत्याचार क्यों ? जो हम अपने दिन सुखसे बितानेका उपाय करें और उनके लिये कुछ नहीं। इसका कारण केवल—

स्वार्थ—

है। हमारा जीवन पूर्ण रूपसे स्वार्थके समुद्रमें डूब रहा है। उसकी लहरें हमें विश्रामके साथ अपने और परायेका हिताहित विचारने नहीं देतीं। इसीसे स्वार्थियोंके द्वारा दूसरेका भला कभी नहीं हो सकता। स्वार्थ है तो छोटासा शब्द, परन्तु इसमें मोहनी शक्ति कूट कूट कर भरी है। इसे हम अमोघ मंत्र भी कहें तो कुछ अनुचित न होगा। जिसे आज हम अच्छा भला आदमी सुनते हैं कल ही उसके जीवनको यही स्वार्थ दूसरे ही रूपमें परिवर्तित कर देता है। क्षत्रियोंके तेजःपूर्ण विशाल राज्यका अधःपतन इसी स्वार्थने किया है। इस बातका इतिहास पूर्ण साक्षी है। जब मनुष्यके हृदयपर स्वार्थका अधिकार होता है तब उसे यह नहीं सूझता कि यह मेरा भाई है, यह पुत्र है, यह पिता है, यह पुत्री है, यह माता है और यह मित्र है। इनके साथ मुझे किस तरहका वर्ताव करना चाहिये ? मेरे जरासे स्वार्थसे इनका कितना अनिष्ट होगा—कितना इन्हें दुःख भोगना पड़ेगा ? इसी स्वार्थकी पराधीनतासे भाई भाईको, पिता पुत्रको, पुत्र पिताको, मित्र मित्रको, माता पुत्रको और पुत्र माताको दुःख देनेमें किसी तरहकी कमी नहीं करते। जिसका जब वश चलता है वह तब ही प्राणपणसे अपनेसे दूसरेका बुरा करनेपर उतारू हो जाता है। स्वार्थसे एक कुटुम्बकी जब यह हालत है तब दूरके सम्बन्धी देश और जातिकी क्या दशा

होगी यह बात विचार करनेके योग्य है। कितनोंका ऐसा खयाल है कि अज्ञानियोंमें स्वार्थ अधिकतासे होता है। परन्तु इसमें हमारा मत भेद है। हम यह नहीं कहते कि अज्ञानियोंमें स्वार्थ नहीं होता। उनमें तो होता ही है। परन्तु कभी२तो पढ़े लिखे मनुष्य भी स्वार्थकी चरम सीमापर पहुंच जाते हैं। हमने जहांतक विचार किया है, मूर्खों-का स्वार्थ पैसेके सम्बन्धमें अधिक होता है। वे जैसे बनता है चाहे फिर किसीको हानि ही क्यों न उठानी पड़े अपने पैसे कमानेकी धुनमें सदा मस्त रहते हैं। परन्तु पढ़े लिखे मनुष्योंको जब स्वार्थ अपने पञ्जेमें फँसाता है तब उसे देखकर छाती दहल जाती है और दांतोंमें अंगुलि दबाना पड़ती है। उनके हृदयकी बुरी वासना इतनी घृणित और संकुचित हो जाती है कि उसका उल्लेख करना लेखनीकी शक्तिसे बाहिर हो जाता है। विद्वान विद्वानको अपना शत्रु समझने लगता है, एकके मार्गमें एक कांटे बोनेकी कोशिश करता है, एकके अभ्युदयको एक बढ़ने नहीं देता और एककी एक निन्दा करता है। जब उनके हृदयमें स्वार्थकी लहरें लहराने लगती हैं तब वे विचारते हैं कि वह इतना विद्वान है मैं क्यों नहीं? उसका जातिमें इतना सम्मान होता है, मेरा क्यों नहीं? इस चिन्ताकी विषम ज्वालामें निरन्तर जलकर वे अपने सत्कारको चरम सीमापर पहुँचानेकी इच्छासे गुणवानों, धर्मात्माओं, जातिहितैषियों, निष्काम कर्म करनेवाले महात्माओं, और देशकी उन्नति चाहनेवाले सज्जनोंकी निन्दा करते हैं, उनका तिरस्कार करते हैं, उनमें किसी तरहका दोष न होने पर भी उन्हें दोषी बनानेकी कोशिश करते हैं और जन साधारणकी उनपरसे श्रद्धा और भक्ति उठ जाय

इसके लिये वे जी जानसे प्रयत्न करते हैं—आन्दोलन करते हैं। सच कहा है—

किमनर्थं न कुर्वन्ति स्वार्थसाधनतत्पराः।

हाय! कैसा अनर्थ है? हमारे दिलमें यह बात क्यों उत्पन्न नहीं होती कि हमारे इस स्वार्थसे देश और जातिका कितना अकल्याण होगा? और उनकी उन्नतिमें कितना धक्का पहुंचेगा? जिनकी हम निन्दा करते हैं—अपमान करते हैं और यदि वे अपने हृदयकी दुर्बलतासे कदाचित् जातिसेवा छोड़ बैठेंगे तो कितनी क्षति होगी? और हम जो अपने स्वार्थमें अन्धे होकर दूसरोंके हितपर कुठाराघात करते हैं उससे कितने दिन चिरस्थायी रह सकेंगे? कितने दिन हम सुख भोग सकेंगे? अखीरमें बुरे कामका परिणाम भी भयंकर होता है। इस लिये नियमसे हमें अपने कियेका फल भोगना पड़ेगा। जिस स्वार्थके वश होकर हम दूसरेका बुरा करना चाहते हैं, उसका बुरा होगा या नहीं? यह उसके भाग्यपर निर्भर है, परन्तु हमने तो बुरे कर्म पैदाकर अपना बुरा पहले ही कर लिया।

वे मनुष्य नहीं जो अपने स्वार्थके वश होकर देश और जातिका अहित करते हैं। उन्हें भर्तृहरिके—

तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये
ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे

इस विचारके अनुसार राक्षस कहने चाहिये। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि जो मनुष्य होकर दूसरोंके विद्या, अभ्युदय, जातिहितैषिता, देशहितैषिता, उदारता और निष्काम कर्म आदि

पवित्र गुणोंको नष्ट करनेकी कोशिश करते हैं, अपने देश और जातिके भाइयोंकी सेवा नहीं करते—उनके दुःखमें दुखी नहीं होते वे—

नरत्वेऽपि पशूयन्ते

की कहावतको ठीक चरितार्थ करते हैं। उनमें मानव समाजकी सभ्यता बिलकुल ही नहीं है। यही स्वार्थ और हमारी संकीर्ण हृदयता हमें परोपकारके लिये—अपनी जाति और अपने देशकी सेवा करनेके लिये आत्मवलि देनेको उत्साहित नहीं होने देती और आत्मवलि दिये विना—संसारके सुखोंकी आशा छोड़े विना हम अपनी अधःपतित जातिका उद्धार भी नहीं कर सकते। अब संसार उन्नतिके प्रवाहमें वह रहा है। हमें भी कुछ अपने स्वार्थके कम करके आत्मवलिके लिये सन्नद्ध होना चाहिये। हमारी जातिकी इस समय बड़ी बुरी हालत है। उसका सुधार करना भी हमारे हाथमें है। संभव है हम अपने इस कार्यमें पूर्ण रूपसे कृतकार्य न हो सकें। कारण, जितना जल्दी अधःपतन होता है उतना जल्दी फिर उत्थान नहीं होता। परन्तु जब हम अभीसे सम्हल जावेंगे तब कहीं हमारी सन्तान हमारे इस अनुष्ठानको पूर्ण कर सकेगी। हमारा कर्त्तव्य है कि हम इस महाव्रतको धारण कर जातिकी निस्स्वार्थ भावसे सेवा करें। जबतक हमारी जातिमें निस्स्वार्थ आत्मवलि देनेवाले महात्मा अवतार न लेंगे तबतक जातिकी वास्तविक उन्नति होना भी कठिन है। क्योंकि उन्नति और निस्वार्थताका बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। और स्वार्थ उन्नतिका पूर्ण बाधक है। आजतक जिस जातिकी और जिस देशकी अवनति हुई है वह केवल स्वार्थपरतासे।

कन्नौजके महाराज जयचन्द्रने, जो भारतवर्षका एक क्षत्रिय राजा था, अपने देशके शत्रुओंको सहायता देकर जो देशका सर्व नाश किया—उसे शत्रुओंके हाथ सोंप दिया इसका कारण भी तो स्वार्थ था। दहलीके महाराज अनङ्गपालने जयचन्द्रको दहलीका राज्य न देकर पृथिवीराजको दे दिया था। वह उसे क्यों न मिला? यही स्वार्थता उसके हृदयमें अग्निकी तरह जलने लगी थी और अखीरमें उसने उसका वदला पृथिवीराजसे लिया—अपनी सहायतासे शत्रुको विदेशसे बुलाकर देशका सर्व नाश किया। जब वड़े २ देशोंकी स्वार्थ परायणोंसे यह हालत हो जाती है तव जो छोटी छोटी जातियां हैं वे सुरक्षित रह सकें यह नितान्त असंभव है।

भाइयो! स्वार्थके वश होकर हम अपने आत्माको वहुत कुछ गिरा चुके हैं। हमारे हृदयमें पवित्रताका लेश भी नहीं है, किन्तु दिनोंदिन वह और भी बुरी बुरी वासनाओंका स्थान वना जा रहा है। यह पतित होनेकी चरम सीमा है। अव और क्या इससे अधिक हमारा अधःपतन होगा? अव हमें कुछ तो विचारना चाहिये कि हमने यह मनुष्य जन्म किस लिये लिया है? जाति और देशके प्रति हमारा क्या कर्तव्य है? हमारी किस तरह उन्नति होगी? कैसे हमारे जाति और देशके भाई सुखी होंगे? उनका इस अज्ञानसे कैसे उद्धार होगा और कैसे हम परस्परकी शत्रुता और भेद भावको भूलकर एक सूत्रमें वँधेंगे? हमने अपने जीवनका वहुतसा हिस्सा दूसरोंको दुःख देनेमें ही विताया है। अव तो कुछ हम अपने पतित आत्माको सुधारें। और आत्मवलि देकर जातिका हित साधन करें। अव भी यदि हममें यह

सुबुद्धि उत्पन्न न हो—यह पवित्र भावना जाग्रत होकर हृदयकी मलिनताको नष्ट न करे तो सचमुच यही कहना होगा कि हमारा जन्म केवल दूसरोंको दुःख देनेके लिये हुआ है। दूसरोंका सर्वनाश करना हमने अपने जीवनका उद्देश निश्चितकर रक्खा है। स्वार्थ, तू धन्य! तेरी अपार महिमा है। तू जो चाहता है वही करा सकता है। तेरा हुकूम अचल और अखण्ड है। उसे कोई तिरस्कृत नहीं कर सकता।

जातिमाता! हम स्वार्थी हैं। हमसे तेरा उपकार नहीं हो सकता। तूने हमें पैदाकर और भी अधिक दुःख उठाया है। अब तू हमारी आशा छोड़ और उन नररत्नोंको उत्पन्न कर जो तेरे लिये हँसते हँसते अपने आत्माकी बलि दे सकें। और दया करके तू हम पतितात्माओंके हृदयमें भी एक वक्त और विराजमान होकर पुरुषार्थ कर देख कि हमारे विचारोंका परिवर्तन होता है या नहीं? यदि हो सके तो तू हम सरीखे कुपूतोंको सुबुद्धि प्रदानकर, जिससे हम अपना कर्त्तव्य समझकर तेरे उद्धारके लिये आत्मबलि दे सकें। क्योंकि यह उक्ति प्रसिद्ध है:—

"पुत्र भले ही कुपुत्र हो जायँ परन्तु माता कुमाता नहीं होती।"

---

## महावीर–जयन्ती।

दिवाली आगई। श्रीमहावीर भगवानको निर्वाण हुये २४३८ वर्ष हो गये। आज ३९ वां वर्ष लगेगा। हम भी आज भगवानके निर्वाणोत्सवकी जयन्ती मनावेंगे। यह पवित्र दिन हमारे लिये बहुत आनन्दप्रद है। आज जैनियोंके आनन्दका पारावार नहीं। बड़े

बूढोंसे लेकर बाल बच्चेतक सज धजकर भगवानकी जयन्ती मनानेके लिये मन्दिरोंमें जावेंगे, भगवानकी खूब आनन्दके साथ पूजन करेंगे और अन्तमें भगवानके स्मृतिचिह्नके रूपमें एक बड़ाभारी लड्डू चढ़ाकर अपना जयन्तीका कर्तव्य समाप्त कर देंगे। बस, यही हमारी जयन्ती है। इतनेहींमें हम अपनेको कृतकृत्य समझ लेते हैं। परन्तु यह समझठीक नहीं। क्योंकि ऐसी जयन्ती तो हमने बहुत मनाली और जबतक यह जीवन रहेगा तबतक और भी मनावेंगे। इस समय हमें विचारनां चाहिये कि इस जयन्तीके द्वारा हमारी जातिको—दुःखित जैन जातिको कितना लाभ पहुँचा है? इस उत्सवका मैं विरोधी नहीं। परन्तु इतना अवश्य कहूंगा कि अब हमें उस जयन्तीके मनानेकी आवश्यकता है जिसके द्वारा हमारी जातिका अज्ञान नष्ट होकर, परोपकारके लिये अपने जीवनका उत्सर्ग करनेवाले भगवान महावीरके अपूर्व गुणोंका स्मरण हो सके। केवल वर्ष भरमें दश या बीस सेरका लड्डू बनाकर चढ़ा देनेसे जयन्ती नहीं मनाई जा सकती। आज देशका जो थोड़ा भी काम करते हैं उनके कार्यके उपलक्षमें देशवासी कितने प्रेम और हर्षके साथ उनका आदर करते हैं, वह आज किसीसे छुपा हुआ नहीं है। आज देशमें ऐसी अनेक संस्थाएं दिखाई देती हैं जो परोपकारी और उदारचरित सज्जनोंके स्मृतिचिन्हके रूपमें संस्थापित हैं। परन्तु हममें वह उत्साह नहीं, वह गुणग्राहकता नहीं जो कि देशके सर्व साधारण लोगोंमें है। नहीं तो क्या कभी यह संभव था कि जैनजातिमें—उदारचरित जैनजातिमें इतनी संकीर्णता होती? जिसकी भलाईके लिये तीर्थंकरों और बड़े २ ऋषि

महात्माओंने अपना राज्य छोड़ा, कुटुम्ब छोड़ा, सुख छोड़ा और अपना जीवन उत्सर्ग कर डाला तब भी जैनियोंको कुछ खबर नहीं, उनके अपूर्व उपकारका कुछ स्मरण नहीं ? यह कृतघ्नता है—किये उपकारको भूल जाना है। धनिक जैन जातिके लिये यह बड़ी भारी लज्जाकी बात है।

हम इस उत्सवको उत्सव नहीं कहते और न इसके द्वारा तबतक आनन्द हो सकता है जबतक हमारी जाति और हमारे देशका बच्चा २ पूर्ण सुखी न हो जाय। भगवान महावीरका जहां २ विहार होता था उसके चारों ओर बारह बारह कोशपर्यन्त दुर्भिक्ष न पड़ने पाता था। सारा संसार उस समय अपूर्व सुखका अनुभव करने लगता था। ठीक उसी तरह सारे संसारको अथवा अभी हममें उतनी उदारता नहीं है तो कमसे कम अपनी जातिको ही सुखी करनेका जब हम उपाय करेंगे तब हम समझेंगे कि आज जैनियोंने सच्ची जयन्ती मनाई है और तब ही वास्तवमें हमें आनन्द होगा।

आजका आनन्द आनन्द नहीं, यह केवल हमारा दिखौवा आनन्द है। जब हममें दूसरोंको सुखी करनेकी वासना नहीं, हमारा हृदय इतना कठोर कि हमारे भाई भूखों मरे, विद्याके बिना उनकी दुर्दशा हो और फिर भी हमारा ध्यान उनकी ओर न जाय—दयासे हृदय न पसीजे तब आनन्द कैसा ? आनन्द तब मनाया जा सकता है जब हृदय सब तरह प्रसन्न हो। दुखी हृदय आनन्दका अनुभव नहीं कर सकता। यदि हम सच्चे आनन्दका अनुभव करना चाहते हैं, तो अब हमें इस दिखौवा जयन्तीकी जगह सच्ची जयन्ती मनाकर जातिका दुःख दूर करना चाहिये। हमें

उचित है कि जातिमें हम वह काम करें जो वास्तवमें भगवान महावीरका अथवा उनके समयका स्मरण करा सके।

जातिके हितैषियो! यदि आप वीर भगवानकी सन्तान हैं, आपको अपने परमपुरुषोंका कुछ अभिमान है, और कुछ भी हृदय-में जातीयताका जोश है तो उठिये और एक वक्त जातिकी दशाका अनुभव करनेके लिये चारों ओर दृष्टि फैलाकर देखिये कि आपकी पवित्र जातिकी—भगवान महावीरके सन्तानकी क्या हालत है? आज वह किस बुरी हालतमें अपने दिन पूरे कर रही है? और जब आप यह बात ठीक २ जान लें तब उसके सुधारका भी उपाय कीजिये।

आप जयन्ती मनाइये और खूब मनाइये। परन्तु जयन्ती सच्ची हो, हृदयमे मनाई गई हो, और जिसके द्वारा आपको, आपकी जातिको और आपके देशको सुख पहुंच सके। वही सच्ची जयन्ती कही जा सकती है।

---

# विषविवाह।

## ( सामाजिक उपन्यास )

### ( १ )

प्यारी! इधर आओ।

उत्तर नहीं।

आओ न?

कुछ उत्तर नहीं।

एक वक्त आकर मेरी बात तो सुनो?

फिर भी कुछ उत्तर नहीं।

प्यारी ! देखो, इस तरह कबतक रहोगी ? एक दिन नहीं, दो दिन नहीं आज तीन वर्ष बीत गये। परन्तु तुम्हारे भावोंमें कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ। ऐसे कबतक काम चलेगा ? देखो, मैं तुम्हारा स्वामी हूं, तुम मेरे पास आओ और मेरी बात सुनो।

इस घटनाको बहुत दिन अभी नहीं हुये हैं। कुल तीस वर्षकी बात है। औरंगाबाद जिलेके अन्तर्गत गंगापुर नामक गांवमें किसनचन्दके शयनागारमें आधीरातके समय उक्त प्रकार बात चीत हो रही थी। किसनचन्द एक धनी आदमी हैं। इनकी उमर लगभग साठ वर्ष के होगी। जिसके साथ ये बातें करते हैं वह इनके दूसरे विवाहकी स्त्री है। वह अभी निरी बालिका है। इसका नाम रंभा है। किसनचंदकी पहली स्त्रीको मरे एक वर्ष बीता है। उसके वियोगसे दुखी होकर ही आपने वृद्धावस्थामें यह विवाह किया है।

रंभाके पिताका नाम नेमिचन्द है। नेमिचन्दके चार बाल बच्चे हैं। नहीं है तो केवल एक धन। धनकी आशासे ही नेमिचन्दने अपनी इकलौती नव वर्षकी पुत्रीका विवाह साठ वर्षके बुड्ढेके साथ किया है। किसनचन्दके एक लड़की थी। उसकी उमर लगमग २३ वर्षकी होगी। वह सदा अपनी सुसरालमें रहती थी। इसलिये किसनचन्दका संसारमें रंभाको छोड़कर और कोई आधार नहीं था, जिसे वह अपने सुख दुःखकी बात कह सके। जब किसनचन्दका विवाह हुआ था तबहीसे वह रंभाको अपने घरपर रक्खा करता था। उसे इस बातका बड़ा भय रहता था कि कहीं रंभाके चाल चलनमें फरक न आजाय। इसलिये

वह उसे सदा एक मकानमें बन्द किये रखता था। उसे घरके बाहर कभी नहीं निकलने देता था। बेचारी नववधूकी यह हालत देखकर पड़ोसियोंको बड़ी दया आती थी और इसीसे वे लोग किसनचन्दको बड़ी घृणादृष्टिसे देखते थे। इस प्रतिदिनकी घृणासे लज्जित होकर किसनचन्दने कुछ दिनोंसे ऐसा कर दिया है कि रंभाको वह दश दिन अपने यहां रखता है और दश दिनके लिये उसके पिताके घरपर भेज देता है।

नेमिचन्दने किसनचन्दकी धन सम्पत्ति देखकर ही उसके साथ अपनी कन्याका विवाह किया है। उसकी पुत्री किसनचन्दके धन सम्पत्तिकी उत्तराधिकारिणी होगी, उससे उसे बहुत धनके मिलनेकी आशा है, अब उसे किसीका मुँह ताकना नही पड़ेगा और एक ही वक्तमें उसकी दरिद्रताका सर्व नाश हो जायगा। इसी आशा पिशाचीने नेमिचन्दको अपने वशमें कर लिया था। परिणाम यह हुआ कि उसे अपने हृदयके टुकड़ेको एक अधमरे बूढ़के गलेसे लटका देना पड़ा। बेचारी बालिकाके सुखमार्गमें जन्मभरके लिये उसनें कांटे बो दिये।

हाय! स्वार्थ! तू मनुष्यमें मनुष्यता नहीं रहने देता। तू उसे राक्षससे भी कहीं अधिक भयंकर बना देता है। तेरे पंजेमें पड़े हुये की कुशल नहीं। उसके हृदयमें भले बुरेका विचार नहीं। तेरे जालमें फँसे हुये पुरुष अपना तो बुरा करते ही हैं परन्तु वे अपने साथ २ औरोंको भी ले डूबते हैं।

नेमिचन्द! तू मनुष्य था। जरा तो विचार करता कि मैं यह क्या अनर्थ करता हूं? यह कितने दुःखकी बात है कि जिस सन्तानके लिये

कठिनसे कठिन दुःख उठाकर उसका पालन पोषण किया जाता है, जिसे देखकर दुःखित हृदयकी शान्ति होती है और जो बड़ी कठिनतासे सुरक्षित रक्खी जाती है, वह क्या आज ही के दिनके लिये? हाय! कैसी निर्दयता? कैसा अनर्थ? जो जरासी अपनी तृष्णा पूरी करनेके लिये प्यारी पुत्रीके गलेपर छुरी फेरी जाती है—वह जन्मभरके लिये सुखसे बञ्चित कर दी जाती है। इसी अत्याचारसे आज हमारी दशा दिनोंदिन बिगड़ रही है। अरे नरपिशाचो! जरा तो सोचो! और कुछ नहीं तो अपनी प्यारी सन्तानकी हालतपर तो ध्यान दो। देखो, इस पापसे—इस घोर अनाचारसे—तुम कभी सुखी नहीं हो सकते। थोड़ी देरके लिये तुम भले ही अपनेको सुखी समझलो—भले ही हृदयमें संतोष मान लो, परन्तु वह सुख नहीं है—वह सन्तोष नहीं है। अपनेको दुखी करनेके लिये अपने आप ही तुम पांवमें कुल्हाड़ी मारते हो। इस भयंकर अत्याचारका फल तुम्हें अवश्य भोगना पड़ेगा।

नेमिचन्द यह बात अच्छी तरहसे जानता था कि, बुड्ढेके साथ कन्याका विवाह करना अच्छा नहीं है। इस अमिल जोड़ीसे पुत्री कभी सुखी नहीं होगी। बुड्ढेके साथ छोटीसी कन्याका विवाह करके उसके लिये सुखकी चाह करना मानो अनन्त तरङ्गोसे तरङ्गित समुद्रके किनारेपर वालूका विशाल महल बांधना है। नेमिचन्दका इस विवाहसे असली अभिप्राय पुत्रीकी सहायता पाकर किसनचन्दके धनके हरण करनेका था और इसी लिये जब जब किसनचन्द रंभाको उसके यहां भेजता तब तब वह उसे अपने यहां रख लेता था। नेमिचन्द और उसकी स्त्री समय समयपर रंभाको धन लानेके लिये अनेक तरहकी बातें सुझाया करती थी। बेचारी रंभा अभी बालिका

थी । वह इस ओर बिलकुल कान नहीं लगाती थी । अथवा कुछ सुनती थी तो उसे अपनी स्वाभाविक चञ्चलतासे उसी समय भूल जाती थी ।

इसी तरह तीन वर्ष बीत गये । रंभाकी अवस्था इस समय बारह वर्षकी हो चुकी । किसनचन्द अब उसे घर नहीं भेजता । उसे अपने ही पास रखता है । बेचारी रंभा इस साठ वर्षके बुड्ढेको पिताकी तरह समझकर उससे सदा डरती रहती है । वह जो कहता है उसे कर देती है, परन्तु भयसे हो, लज्जासे हो अथवा दुःखसे हो उसके साथ बात चीत करनेमें उसकी हिम्मत नहीं पड़ती ।

लज्जा स्त्रीका अमूल्य रत्न है । लज्जाके द्वारा स्त्री बहुत मनुष्योंके बीचमें रहनेपर भी वह अपने धन, मान, कुलकी रक्षा अच्छी तरह कर सकती है । रंभा यह जानती थी कि मुझे मेरे माता-पिताने कुऐमें डालदी हैं—मुझे जन्मभरके लिये सुखसे वञ्चित करदी है। परन्तु फिर भी उसके हृदयमें कभी किसी तरहकी बुरी वासना उत्पन्न नहीं होती थी । उसकी सखी—प्यारी सखी लज्जा उसे सदा सुरक्षित रखती थी। किसनचन्दमें एक बुरी आदत थी । वह नशा करता था। नशा भी कैसा ? शराबका । उसने अपने पासमें बैठनेवाले गुण्डोंसे सुन रक्खा था कि शराब पीनेसे सुरतक्रीडामें बड़ा आनन्द आता है । इसीसे दिनरात उसके मुँहसे शराबकी दुर्गन्ध आया करती थी । आज वह शय्यापर पड़ा हुआ है । दो चार शराबकी बोतले भी वहां रक्खी हैं। थोड़ी ही दूरपर रंभा भी एक शय्यापर सोई हुई है । वृद्ध किसनचन्द रंभाको अपने पास बुलाना चाहता है । रंभा उसके कहनेको चुप चाप पड़ी २ सुन रही है, पर वह उसके पास नहीं जाती । उसकी

यह धृष्टता देखकर किसनचन्दके नेत्रोंमें क्रोध बरसने लगा। वह बोला कि—इस समय मैं अन्तिम बात कहता हूं। सुन—"मुझसे यह हर दिनकी कचकच नहीं होती। यदि तू मेरा कहना नहीं मानती है तो मुझे भी अब तुझसे कुछ काम नहीं है। मैं तुझे अभी अपने घरसे निकाल देता हूं और न आज पीछे कभी तेरा मुख देखूंगा" रंभा अभीतक तो चुपचाप पड़ी २ सब बातें सुन रही थी; पर अब उससे रहा नहीं गया--वह अपने हृदयको थाम न सकी। किसनचन्दके अन्तिम वचन सुनते ही उसके नेत्रोंसे टप २ आसुओंकी धारा बहने लगी। किसनचन्द जैसे २ उससे कुछ कहता था वैसे वैसे ही वह अधिक अधिक रोती थी। किसनचन्दने अब समझा कि उसकी सब आशालताओंपर रंभाके आसुओंके साथ साथ पानी फिरता जाता है। उसके साथ अब बातचीत करना केवल विटम्बना मात्र है। अब कुछ उसकी अकल ठिकाने आई। वृद्धविवाहका सुख उसे मालूम होने लगा। इस समय उसे सहसा अपनी पहली स्त्रीकी याद हो आई। एक एक करके उसके हाव, भाव, प्रेम, विलासादि सब कुछ उसे याद आने लगे। वह उसके लिये बड़ा व्याकुल हो उठा। जब उसकी स्त्रीने यौवनावस्थामें पहले ही पदार्पण किया था तब उसे उसने किस तरह अपने पर लुभाई थी, किस सुखसे उसके साथ दिन बिताये थे, कैसी २ सुन्दर फूलोंकी शय्यापर सोकर उसके साथ आराम किया था, जब पुत्रीका जन्म हुआ था तब कैसी खुशी मनाई गई थी और पुत्रीने भी अपनी बाल सुलभ लीलासे किस तरह उनके चित्तको आनन्दित किया था। ये सब बातें उसके हृदयमें उत्पन्न होकर उसे और भी अधिक

दुखी करने लगीं। किसनचन्द एक दिन दूकानके कामकाजसे थककर घरपर इस आशासे आया था कि उसे स्त्रीके द्वारा शान्ति मिलेगी। परन्तु भाग्यवश उस दिन उसकी स्त्री पडोसीके यहां बैठी२ कुछ इधर उधरकी बातें सुन रही थी। इस लिये उसे घरपर आनेमें देरी होगई। उससे किसनचन्दकी इच्छा पूरी न हो सकी। इसपर उसने उस बेचारीका बड़ा तिरस्कार किया था, उससे काँपकर उसने रोते २ किस तरह उसकी आज्ञा पालन की थी। आज उसके उस रोनेके साथ किसनचन्दने रंभाके रोनेकी तुलना की तो उसे उसकी पहली स्त्रीके रोनेमें धीरता और भक्तिका सोत बहता हुआ दीख पड़ा था और रंभाके रोनेमें सरलता और लज्जा दिखाई दी। उसकी पहली स्त्री बडे प्रेमके साथ उसकी भक्ति करती थी। परन्तु रंभामें वह एक भी बात नहीं। किसनचन्द उससे प्रेम करता है और उसे अपनी आखोंकी पुतलीकी तरह रखना चाहता है। परन्तु रंभा उसके इस प्रेमकी कुछ परवा न कर उलटी उससे भय और लज्जा करती है। वह ऐसा क्यों करती है? यह बात उसका हृदय जाने। इतनेपर भी उसका मन एक है और हृदय सरल है। उसमें किसी तरहकी बुरी वासनाने स्थान नहीं पाया है और न कभी पावेगा। इसी विषयके विचारने किसनचन्दके चित्तको बहुत ही डांवा डोल कर दिया। उसका चित्त नाना तरहकी चिन्ताओंसे घिर गया। उधर रंभाने भी निद्रा देवीकी गोदका आश्रय लिया।

वृद्ध किसनचन्दने इस समय एकबार रंभाके मुखचन्द्रकी ओर देखकर विचार किया कि "हाय! इस बेचारी बालिकाके साथ विवाह कर मैंने क्यों इसके जीवनपर पानी फेरा? यदि इसका विवाह मुझसे

न होकर किसी युवकके साथ होता तो आज यह इस तरह दुखी न होकर कितना आनन्द मनाती?" इस विचारके बाद ही उसके हृदयमें सुबुद्धि और कुबुद्धिका द्वंद्व युद्ध मचा।

कुबुद्धिने कहा—रंभा मानिनी है। वह मुझे वृद्ध समझकर मुझसे घृणा करती है। मैं उसे उसके मानका मजा चखाऊंगा। जिससे वह जन्मभर याद करे। मैं दूसरा विवाह करूंगा और उसे घरसे निकाल दूंगा। मेरे पास धनकी कुछ कमी नहीं है। मेरी दासी और मुझसे इतना गर्व?

सुबुद्धि उसका यह विचार देखकर बोली—किसनचन्द! तूने इतने दिन सबर की, अब और भी कुछ दिनोंतक देख। तू दूसरे विवाहकी—विषविवाहकी इच्छा मत कर। जिसे तू अमृत समझकर पीना चाहता है वह विष है। एक फल तो तू अभी भोग ही चुका है, फिर क्यों अन्यायका बीज बोना चाहता है? बेचारी रंभा अभी बालिका है। उसे अभी संसारिक ज्ञान नहीं है। जब वह अच्छी तरह समझने लगेगी तब तुझे ही अपना आराध्य देवता समझेगी। वह हिन्दूकुलमें उत्पन्न हुई है और हिन्दूनारीका पति ही आधार होता है। उसे छोड़कर और कोई उसका संसारमें नहीं होता। वह तेरी ही होकर रहेगी, परन्तु कुछ दिन और देख।

कुबुद्धिने फिर कहा—रंभाको अपने रूप यौवनका गर्व है। वह गर्व उसका नष्ट करूंगा। अब मैं कभी उसका मुहँ नहीं देखनेका। कल ही उसे उसके पिताके घरपर पहुंचाये देता हूं। देखूं फिर वह किस पर अभिमान करेगी? मैं वृद्ध था तो भी क्या हुआ? इससे तो अच्छा ही था जो अब वह दिन रात घुल घुल कर अपनी जान

गँवावेगी ? छोटीसी लड़कीको इतना अभिमान ! किसनचन्द इस प्रकार कामरूप झूलेपर चढ़कर नाना तरहके सोच विचारोंमें डगमगाने लगा और अपने चलनेका रास्ता ढूंढने लगा।

काम ! तेरी लीला अपरम्पार है। उसका पार पा जाना कठिन ही नहीं किन्तु नितान्त असंभव है। तू सारे संसारका एकछत्र राज्य करनेवाला सम्राट है। तेरे हुकमके टालनेकी किसीमें हिम्मत नहीं है। जब तेरी कृपा बुरेसे बुरे आदमीपर भी हो जाती है तब वह बड़ी हिम्मतके साथ असंभवको संभव करनेकी चेष्टा करने लगता है। कौन नहीं जानता कि चन्द्रमाका छूना असंभव है, समुद्रका हाथोंके द्वारा तैरना कठिन है, अग्नि प्रवेश करना बड़ा भयंकर है। परन्तु जिसपर तेरी मोहनी धूल पड़ जाती है—जब पुरुष कामके वश हो जाता है तब उसे न चन्द्रमाका छूना असंभव मालूम पड़ता है, न समुद्रका तैरना कठिन जान पड़ता है और न अग्निप्रवेश ही भयंकर दिखता है। अर्थात्—कामी पुरुष सब कुछ करनेको तैयार हो जाता है। जब अच्छे अच्छे वीर पुरुषतक तेरी टेढ़ी भृकुटिको नहीं सह सकते तब बेचारे वृद्ध किसनचन्दकी क्या मजाल जो वह तेरे शासनका अपमान कर सके—कामको जीत सके ?

अपूर्ण.

---

# खण्डेलवालजातिकी उन्नति।

गताङ्कमें हम यह बात बतला आये हैं कि कुछ समय पहले खण्डेलवालोंमें अच्छे २ विद्वान हो चुके हैं और उनके द्वारा इस जातिका बड़ा उपकार हुआ है। जब इस जातिमें विद्वान थे और

विद्याकी कदर थी तब यह जाति बहुत उन्नति पर थी । परन्तु जबसे इसमें विद्या कम हुई और उसके न होने से कुरीतियों का प्रचार बढ़ा तबहीसे आजतक यह गिरती हुई चली आती है । आज इसकी यहांतक अवनति हो चुकी है कि इसका पुनरुत्थान बड़ा ही कठिन जान पड़ता है । यदि आजसे, खण्डेलवाल भाई सम्हल जायँ और जी जानसे इसकी उन्नतिमें लग जायँ तब कहीं पचास सौ वर्षोंमें यह जाति कुछ उन्नति कर सकती है । परन्तु जब हम अपने भाईयोंके उत्साह और जातिकी उन्नतिके सम्बन्धमें उनके विचारोंपर ध्यान देते हैं तो हृदयमें एक भारी आघात पहुंचता है । उनकी बेपरवाही देखकर एक साथ सब उत्साह नष्ट हो जाता है । नहीं जान पड़ता कि इस जातिकी दशा कब सुधरेगी ? कब हमारे भाई इस ओर ध्यान देंगे ?

अज्ञानका प्रभाव इन्हें दबाये हुये है । वह इन्हें उठने नहीं देता और न अभी इनमें कुछ शक्ति है जो उसके प्रभावको ये नष्ट कर सकें । खण्डेलवालोंको सबसे पहले अपनी जातिमें विद्याकी सीमा बढ़ानी चाहिये । जब वे इसमें कृतकार्य हो जायँगे तब उन्हें अपनी उन्नति करनेमें कुछ विलम्ब नहीं लगेगा । क्योंकि जातिकी उन्नति और अवनति विद्याकी वृद्धि और हानिपर निर्भर है ।

खण्डेलवाल जिस २ प्रान्तमें रहते हैं उनकी सब जगह हालत बिगड़ी हुई है । धन तो बेशक उनके पास थोड़ा बहुत अवश्य है, परन्तु विद्यासे वे निरे दरिद्र हैं । उन्हें अपनी इस दरिद्रताका कभी दुःख नहीं होता । वे अपनेको धनी समझ कर अभिमान करते हैं और यह कोशिश करते हैं कि हमारा सब जगह बोल बाला रहे,

सब हमारी आज्ञा माने, जातिमें हम सर्व मान्य गिने जावें और सब हमारी खुशामद करें। ये बातें उनसे धन करवाता है। क्योंकि निर्धन पुरुषमें यह अभिमान नहीं देखा जाता। धनका होना बुरा नहीं है। जिस जातिमें अच्छे २ प्रतिष्ठित धनी हैं उस जातिको अपना अच्छा सौभाग्य समझना चाहिये। परन्तु धनके पानेका अर्थ यह नहीं है कि उसके द्वारा अपने ही भाइयोंको तकलीफ पहुँचाई जाय? उसका उपयोग ऐसे कामोंमें होना चाहिये कि जिससे अपनी जातिको और अपने देशको लाभ पहुँचे, वर्तमानकी बिगड़ी हालतका सुधार हो, और जातिमें जिन बातोंकी जरूरत है, वे पूरी की जायँ। धन पाकर उसका दुरुपयोग करना अनुचित है। मनुष्यका कर्तव्य है कि वह अपने भाइयोंके सुधारकी कोशिश करे—जैसे हो वैसे उनके दुःख दूर करनेका संकल्प करे। मनुष्य और पशुओंमें यही तो भेद है कि मनुष्योंमें ज्ञानशक्तिके अधिक होनेसे वे अपना और दूसरेका हानि लाभ विचार सकते हैं। पशुओंमें उतनी ज्ञानशक्तिका उत्कर्ष नहीं है। इसलिये वे किसी तरहके हानि लाभका विचार नहीं कर सकते हमारे भाइयोंका जातिकी उन्नतिकी ओर लक्ष्य नहीं है। वे इस बातका कभी विचार भी नहीं करते कि हमें क्या करना उचित है? हमारे भाई दुखी हैं या सुखी? उनमें किस बातकी त्रुटि है? इसी विचारका—इसी पवित्र उदारताका अभी हमारे भाइयोंके हृदयमें जन्म नहीं हुआ है। अभी वे अपनेको सुखी देखकर यह समझ रहे हैं कि सारा संसार भी सुखी है। मनुष्य जबतक स्वयं दुःख नहीं उठाता—स्वयं उसे बड़ी २ कठिनाइयोंका सामना नहीं करना पड़ता तबतक वह यह नहीं जान सकता कि दुःख क्या चीज है और उससे

क्या २ तकलीफ़ होती है ? अनुभव बड़ी उत्तम कसौटी है। जिसे जिस बातका अनुभव हो जाता है तब वह उसका हानि लाभ सहज ही जान सकता है। हमारे धनी भाइयोंको कभी तकलीफ उठानेका मौका नहीं आता। वे जो चाहते हैं उनके आंख उठाते ही वह उसी वक्त किया जाता है। फिर क्यों उन्हें दूसरोंके दुःखका अनुभव होने चला ? उन्हें अपने गद्दी तकियोंके सहारे पड़े रहनेसे थूंकनेतकके लिये उठनेकी फुरसत नहीं मिलती—वे दो सेकेण्ड भी सुखका छोड़ना जब पसन्द नहीं करते तब वे अपने भाइयोंके लिये अपनी जान जोखममें डालेंगे यह संभव नहीं माना जा सकता। इसी विलासितासे उनके हृदयमें पवित्र भावनाएं उत्पन्न नहीं होतीं। अपने भाइयोंके सुख दुःखका उन्हें खयाल नहीं होता। हमारा विश्वास है कि जबतक हमारे दिलमें प्रेमभावका उदय न होगा—एककी एक सहायता न करेंगे तबतक हमारी उन्नति नहीं होनेकी। उन्नति वस्तु क्या है जिसके लिये इतना आन्दोलन किया जाता हैं ? जब हम आपसमें प्रेमके सूत्रमें बंधकर एककी एक अवस्थाका सुधारना सीखेंगे, दूसरेके दुःख दूर करना अपना कर्तव्य समझेंगे और ऐसी ही हालत जब सब देशके वासियोंकी हो जायगी——सब मिलकर परस्परका दुःख नष्ट करने लगेंगे तब ही देश सुधर जायगा और फिर वही उन्नति कहलाने लगेगी। इस लिये हमे अब अपने संकीर्ण भावोंको नष्ट करके उनकी जगह उदारताको स्थान देना चाहिये—सबसे प्रेम करना चाहिये और जो दुखी हैं उनका दुःख दूरकर उन्हें सुखी करनेकी कोशिश करनी चाहिये।

हमारे भाइयोंमे प्रेमकी जरूरत है क्योंकि वे अभी यह नहीं जानते कि प्रेम क्या वस्तु है? और हमे किसके साथ कैसा प्रेम करना चाहिये? अभी उनका प्रेम सीमावद्ध है। वे अपने प्यारे स्त्री, पुत्र, पुत्री, भाई आदिसे ही प्रेम करना जानते हैं। इसके वाहिर भी प्रेम किया जाता है यह अभी उन्हें मालूम नहीं है।

जातिमें इस समय जो कुछ समझदार हैं उनका कर्त्तव्य है कि वे अपने भाइयोंके लिये ज्ञानका रास्ता खोलें। जव ज्ञानका माहात्म्य उनके हृदयमें अंकित हो जायगा तव वे स्वयं प्रेम करना सीख लेंगे। और उस समय जातिकी उन्नति होकर वर्तमान अवनति भी नष्ट हो जायगी। ज्ञान ही हमारी अवनतिको नष्ट करेगा। इस लिये जातिमें ज्ञानका प्रचार करना सवसे पहला हमारा कर्त्तव्य है।

---

## चन्द्र।

निशाकान्त महराज अहो तुम गगन–विहारी
शीतलताके पुञ्ज सुभगताके अधिकारी।
सोलह कला–विभूषित हो, जव कान्ति दिखाते
तव तारागण मध्य इन्द्र सम शोभा पाते॥ १॥
कभी अर्ध औ कभी पूर्ण हो दर्श कराते
मानो जगको हानि वृद्धिका सवक सिखाते।
झुकते उत्तर कभी कभी दक्षिण झुक जाते
इससे शुभ औ अशुभ समयका ज्ञान कराते॥ २॥
सव जीवोंको अनुपम तुम शीतलता देते
सूर्यतापसे तप्त सृष्टिका दुख हर लेते।
शान्तिराज्यका संस्थापक है उदय तुम्हारा

अतः तुम्हें संसार वधाई देता सारा ॥ ३ ॥
फूलोंमें मकरन्द वदौलत तेरी होता
पीकर जिसको भ्रमर शब्द सुन्दर है करता।
मानो वह सुख पाकर कीर्त्ति तुम्हारी गाता
शीतलताको चन्द्र! जगत यह तुमसे पाता ॥ ४ ॥
देख तुम्हारी शरदपूर्णिमाकी निर्मलता
वालक गण खुश होकर करते खेल विपुलता।
गृहपर सुन्दर छटा किरणकी पड़ी देखकर,
रतिलालस जन होते हैं सुख मग्न अधिकतर ॥ ५ ॥
विशद सुधाका सोत वहाकर तुम हित करते
गुण रत्नाकर तुम्हें सभी सज्जन हैं कहते।
किन्तु वियोगी-हृदय देख तुमको है जलता
इसी दोषसे निर्मल यशमें धब्बा लगता ॥ ६ ॥

दशरथ वलवंत जाधव, देवरी ( सागर )

---

## विद्याशत्रुओंकी धींगाधींगी।

आज हम इस लेखमें अपने पाठकोंको उन लोगोंका परिचय देंगे जो विद्याके पूर्ण शत्रु हैं, जिन्हें विद्याका नामतक सुनना जहरसा मालूम पड़ता है और जो लोगोंको भड़काकर सामाजिक संस्थाओंके नष्ट करनेमें अपनेको बड़ा साहसी समझते हैं।

हमारा विश्वास था कि आज जैनजातिमें आन्दोलन होते २ क्रमसे कम पन्द्रह सोलह वर्षके लगभग हो चुके हैं। उससे हमारे भाई और कुछ नहीं तो विद्याकी उपयोगिताको अवश्य जान चुके होंगे

और न भी जान चुके होंगे तब भी इतना प्रभावतो उनके हृदयपर अवश्य पड़ा होगा कि वे विद्यासे उतना प्रेम न करते होंगे तो इतना द्वेष भी न करते होंगे। परन्तु आज हम अपने लेखमें जिस घटनाका उल्लेख करेंगे उससे उक्त विश्वास दृढ़ नहीं रहने पाता। हमें विवश होकर कहना पड़ता है कि अभी हमारी जातिमें—जैनजातिमें विद्या-शत्रुओंकी कमी नहीं है। इसीसे आज ऐसी २ घटनाएं होकर जातिको बहुत क्षति पहुंच रही है।

हमारे यहां ( बड़नगरमें ) कुछ दिनोंसे ज्ञानप्रकाशिनी समिति नामकी एक छोटीसी संस्था स्थापित है। इसकें आधीन एक पाठ-शाला, जिसमें लगभग ४० छात्र पढ़ते हैं, और एक सर्व साधारणोप-योगी पुस्तकालय है। पाठशालाका खर्च कुछ चन्देसे और कुछ पैसेफण्डकी पेटीसे चलता है और पुस्तकालयका खर्च समितिके मेम्बरोंके द्वारा चलता है। दोनों कार्य साधारण रीतिसे अच्छी तरह चलते हैं। परन्तु. श्रेयांसि बहुविघ्नानि के अनुसार जबसे यह संस्था स्थापित हुई है तबहींसे कुछ विद्या—शत्रुओंके हृदयमें एक भारी खलबलीसी पड़ गई है.। और तबहीसे वे ऐसे मौकेकी राह देख रहे हैं कि किसी दिन इसे जड़से नेस्तनाबूद करदी जाय। चार महीने पहले एक ऐसा ही मौका आया था उसपर भी बहुत कुछ धींगाधींगी की गई थी। परन्तु उसवक्त समितिके सभ्योंकी हिम्मतसे समितिको हानि न पहुँच सकी। इतनेमें महापर्व आगया। स-दाके अभ्यासानुसार कुछ लोगोंकी कषायोंको. उत्तेजना मिलने लगी और इधरसे दो चार अक्षरशत्रुओंने और भी अपने सरीखे कुछ अपढ़ लोगोंको भड़काकर—उन्हें भली बुरी बातें समझाकर जल्ती

हुई कषायाग्निमें घीकी आहुतिके डालनेका काम किया। फिर क्या था, लगी धींगाधींगी होने। धींगाधींगी हुई और पूर्ण हुई। विद्या-शत्रुओंने विद्याप्रेमी दलके सभ्योंको खूब गालियां सुनाई। यहांतक कि एक सज्जनको दल बांधकर मारनेको आये। परन्तु एक ओरकी शान्तिने यह अनर्थ न होने दिया। इस धींगाधींगीसे नवमें और दशमें अध्यायका अर्थतक भी न हो सका। पाठशाला बन्द करदी गई। पुस्तकालयके लिये जनरल हुकुम निकला कि इसी वक्त पुस्तकें आदि सब सामान मन्दिरके मकानसे निकाललो! नहीं तो उठाकर फेंक-दिया जायगा। समितिके सभ्योंने बहुत अच्छा किया जो रातको दो बजे अपना सामान वहांसे उठा लिया। नहीं तो सुबह ही उन्हें ताला-लगा हुआ मिलता। क्योंकि कुछ मूर्खोंने सलाह कर शारदाभवनका ताला लगा दिया था। कैसा अज्ञान? कैसी मूर्खता? और कैसी विद्यासे शत्रुता? मानो समितिके मेम्बरोंनें इस परोपकारके कार्य-द्वारा अपना घर लक्ष्मीसें पूर्ण भर लिया और हमें कुछ नहीं दिया सो क्यों? इसीसे उनसे ये द्वेष करते हैं, लड़ते हैं और उनके कामोंके नष्ट करनेकी कोशिश करते है। वाह! कैसी बुद्धिमानी है?

यह हम उपर लिख आये हैं कि पाठशालाका कुछ खर्च पैसे-फण्डकी पैटी द्वारा चलता है। अबकी बार दशलक्षणीमें पेटीके द्वारा अधिक आमदनीके होनेकी आशा थी। इस लिये समितिके मेम्बरोंने धूपदशमीके दिन मन्दिरजीमें गोलक लगा दी थी। विरुद्ध-दलके नेताओंको यह ठीक नहीं लगा। उन्होंने गोलक निकाल कर फेंकदी और साथमें विद्याप्रेमियोंको खूब मन-सुनाई। उनकी इस धींगाधींगीसे विद्यादानमें बड़ी भारी क्षति

पहुंची । इसी विषयको लेकर द्वादशी और चतुर्दशीको जो एक तरफी तुमुल--युद्ध मचा था, वह अपूर्व था--दर्शनीय था। हमारे विरुद्ध दलके सेनाध्यक्षोंने उस समय बड़ी वीरता दिखाई थी । क्या मजाल थी जो कोई उस समय उनकी कुटिल दृष्टिकी ओर आंख उठाकर देख सके ? उनका हाथोंका इधर उधर घुमाना अच्छे बहादुरकी तलवारकी गतिको शर्मिन्दा करता था, मेघकी तरह अनर्गल गर्जना तोपोंके भीषण कर्णभेदी शब्दको मात करता था, खीसेके रुपयोंकी खन खनाहट शस्त्रोंकी भयंकर मुठभेड़को दबाती थी और देनेको चाहे एक पैसा भी न हो परन्तु उनकी उस समयकी उदारता कर्णके दानको लज्जित करती थी । वे कहते थे कि यह पैसेफण्डकी पेटी क्या निकाली है, किन्तु भीख मांगनेके लिये खासा कारखाना खोला है । इन लोगोंको पैसा २ मांगते शर्म भी नहीं लगती । हमारी तो सब नाक कट गई--हमें अपने मुहँतकके दिखानेको जगह न रही । अरे ! जैनियोंको इस तरह भीख मांगना क्या उचित है ? कैसी निर्लज्जता ?

इन धन कुबेरोंसे प्रार्थना की गई कि यदि आपको यह भीख मांगना बुरा जान पड़ता है--इसे देखकर आपको लज्जा आती है तो पाठशालाके चलानेका भार आप अपने उपर ले लीजिये । फिर हमें इस भीखके मांगनेकी कोई जरूरत न पड़ेगी । अन्यथा हम तो गरीब हैं, हमारे पास लेने देनेको कुछ नहीं है । परन्तु हां पाठशालाका काम अवश्य किसी तरह चलावेंगे । फिर उसके लिये भीख ही क्यों न मांगनी पड़े ? उस समय किसी माईके लालकी हिम्मत न पड़ी जो पाठशालाका भार अपने ऊपर ले लेता ? और कहने तथा गालियां

देनेको सब उमड़े पड़ते थे। क्या यही पुरुषत्व है? इसी हिम्मत पर इतनी धींगाधींगी की गई थी? वाह!

यह कितने दुःखकी बात है कि जिस विद्याप्रचारके लिये देशके माननीय बड़े २ प्रतिष्ठित पुरुष दिन रात अविश्रान्त परिश्रम करें, अपने सुखको जलाञ्जलि दें, अनेक आपत्तियां सहें और स्वयं लाखों रुपया देकर भी दूसरोंके द्वारपर जाकर अपना हाथ फैलावें। उस विद्याके साथ हमारे भाइयोंकी कैसी अश्रद्धा? कैसी शत्रुता? जो वे चलती हुई संस्थाको नष्ट करनेमें अपना जीवन सफल समझते हैं। भाइयो! विचार कर देखो कि आप महाराज दर्भंगानरेश और माननीय मदनमोहन मालवीयजी आदिसे कितने बड़े हैं जो विद्याके लिये दूसरोको मांगते हुये देखकर आपको शर्म लगती है? खेद!

पुस्तकालयमें सर्व साधारणके लिये कुछ छपी हुई पुस्तकें भी थीं। छापेका नाम सुनकर हमारे विरुद्ध दलके अज्ञानका पारा ठीक अन्तिम डिगरीपर पहुँच गया। उसे दूसरा एक और सुन्दर मौका धींगाधींगीका हाथ लग गया। हम यहां इतना ही कहकर इस विषयको समाप्तकर देते हैं कि विरोधी दलने इन संस्थाओंके नष्ट करनेमें किसी तरहकी कमी नहीं की और जहांतक उससे हो सका उसने विरोधकी अग्नि खूब ही भड़काई। इस समय सब संस्थाओंका काम बन्द पड़ा हुआ है। यदि चलेगा तो हम फिर अपने पाठकों खुश खबरी सुनावेंगे। उद्योग किया जा रहा है।

हमें इस धींगाधींगीका मूल कारण एक विश्वास पात्रके द्वारा ज्ञात हुआ है कि जिन महात्माके द्वारा यह अग्नि इतनी उत्तेजित हुई थी उनसे पाठशालाके रुपया लेना हैं। उनसे रुपया कई वक्त

मांगा गया, परन्तु उन्हें टालमटोल करते २ आज आठ वर्ष होगये। रुपयोंका अभीतक पता नहीं है। संभव है कि पाठशालाकी सुव्यवस्था देखकर उनके दिलमें किसी तरहकी शङ्का होगई हो और इसीसे फिर उनके द्वारा यह षड्यंत्र रचा गया हो। क्योंकि पाठशालाकी अच्छी हालतमें उनसे रुपया अवश्य ही वसूल किया जाता और आपकी नियत कैसी है? इसका उत्तर आठवर्षकी टालमटोलसे पाठक स्वयं जान सकते हैं।

दुखके साथ कहना पड़ता है कि एक समय वह था जब जैनजातिमें परोपकारके लिये आत्मविसर्जन करनेवाले महात्मा अवतार लेते थे, परन्तु आज उसी जातिकी कैसी शोचनीय दशा? उसका कैसा अभाग्य? जो ऐसे २ कुलकलङ्क पैदा होकर उसीको नष्ट करना चाहते हैं। धन्य! तब हम क्यों न कहें कि अभी हमारी जातिमें विद्याशत्रुओंकी कमी नहीं है। नहीं जान पड़ता कि वे विद्यासे क्यों इतनी शत्रुका करते है? क्यों उन्हें यह परोपकार काम का अच्छा नहीं लगता?

भाइयो! जरा विचारो कि इस धींगाधींगीके द्वारा जो हानि हुई वह किसकी? हमारी या किसी और की? और जब हम ही अपनी हानि करनेको तैयार हैं—अपने पैरमें आप ही कुल्हाड़ी मारना चाहते हैं तब हम कैसे यह इच्छा कर सकते हैं कि हमारी उन्नति होगी? हमें अपनी जातिकी अधःपतित दशापर भी जब दया नहीं आती तब दूसरोंपर दया करेंगे यह कभी संभव नहीं। जैनधर्मके उदार उद्देश्यकी ओर तो जरा देखो कि वह तो सारे संसारको अपनाना चाहता है और तुम उसके धारण करनेवालोंसे—अपने भाइयोंसे ही

इतना द्वेष इतनी ईर्षा करते हो कि जिसका कुछ ठिकाना नहीं। इतनेपर भी तुम यदि अपने इस अधम साहसको अच्छा समझते हो तो तुम्हारी यह नितान्त भूल है। बुराईमें कुछ नहीं रक्खा है। काम वह करो जिससे संसार तुम्हारा गुण गान करने लगे। यह तुम ही सोचो कि आजतक बुराईसे क्या किसीने लाभ उठाया है ? विश्वास करो कि अच्छे कामके करनेसे भलाई होती है और बुरेसे बुराई।

हम आशा करते हैं कि हमारे भाई हमारी प्रार्थनापर ध्यान देकर उस कामके करनेका बीड़ा उठावेंगे जिसके द्वारा जाति और देशकी भलाई हो और अपनी बुरी वासनाको हृदयसे निकाल दूर करेंगे।

मैं अपने कठोर शब्दोंकी बावत आपसे क्षमा चाहता हूं और आशा करता हूं कि आगामी आप मुझे ऐसे लेखके लिखनेका अवसर न देंगे।

जातिका दास—

चम्पालाल काला

---

## प्रेरित।

### दीक्षा—समारम्भ।

खवर है कि रत्नमालाके सम्पादक श्रीयुक्त पं० जवाहरलालजी साहित्यशास्त्री जिस पक्षके उपासक हुए हैं, उसकी अब विधिपूर्वक दीक्षा लेनेवाले हैं। अबतक इस बातकी जांच हो रही थी कि वास्तवमें वे उक्त पक्षके योग्य हैं या नहीं। परन्तु रत्नमालाके १६—१७ अंक निकालकर उन्होंने भलीभाँति सिद्ध कर दिया है कि हम प्रार्थ-

नीय पक्षके सर्वथा योग्य हैं। इतना ही नहीं—बल्कि उसकी इमारतको खड़ी रखनेवाले एक सुदृढ़ स्तम्भ हैं।

सुनते हैं यह दीक्षासमारम्भ बहुत ही जल्दी होनेवाला है। अभीतक पूरापूरा कार्यक्रम प्रकाशित नहीं हुआ है। जितनी बातें गुप्त रीतिसे मालूम हुई हैं, उनका सार यह है—

इस समारम्भका कार्य सुचारु रूपसे सम्पादन करनेके लिये एक कमेटी बनाई गई है। कमेटीके सभापति पं० प्यारेलालजी अलीगढ़-निवासी चुने गये हैं। न्यायदिवाकर पं० पन्नालालजीने विना कुछ फीस या दक्षिणा लिये दीक्षाविधि सम्पादन करनेकी उदारता दिखलाई है। पं० मेवारामजी श्रीलालजी आदि अनेक सज्जन कमेटीके मेम्बर हैं। कमेटीने तजवीज किया है कि पहले शास्त्रीजी उन कार्योंका प्रायश्चित्त देकर शुद्ध कर दिये जायँ जो उन्होंने अपनी पूर्वावस्थामें इस ग्रहण किये हुए पक्षसे विरुद्ध रहकर किये थे। वे कार्य ये हैं:—

१ जैन ग्रन्थोंका छपाना, बेचकर कमीशन खाना और अनुवादन संशोधन आदि करनेकी दक्षिणा लेना। इसके लिये यह तजवीज हुई है कि शास्त्रीजीके अनुवाद किये हुए और छपवाये हुए जो द्रव्यसंग्रह, स्याद्वादमंजरी, नाममाला आदि ग्रन्थ हैं उनकी जितनी प्रतियां शेष हैं, वे सबकी सब प्रकाशकोंसे खरीद ली जावें और उनका जलप्रवाह करा दिया जाय। इसमें जो कुछ खर्च पड़ेगा उसे उदारचरित सेठ मेवारामजीने देना स्वीकार किया है।

२ ग्रन्थ छपाने आदिमें जो पापबन्ध हुआ है उसकी निर्जराके लिये वयोवृद्ध पं० प्यारेलालजीने यह सम्मति दी है कि शास्त्रीजीके

हाथमें जबतक कोई समाचार पत्र रहे तबतक वे ग्रन्थ छपानेवालोंको भरसक गालियां सुनाते रहें और लोगोंको नरकमें पहुंचानेवाले छापेसे दूर रहनेके लिये उपदेश देते रहें।

२ शास्त्रीजीने पहले शुद्धाम्नायी प्रतिष्ठापाठके विरुद्धमें बहुत कुछ प्रयत्न किये हैं और शुद्धाम्नायके विरुद्ध पंचामृताभिषेकादि विविध विषयोंका मण्डन जबानी तथा लेखादि द्वारा किया है। इसके प्रायश्चितके लिये कमेटीने यह तय किया है कि शास्त्रीजी जबतक पत्रसम्पादक रहें तबतक अपने शुद्धाम्नायी सेठों और उनके पादपद्मोपजीवी पण्डितोंकी हरवक्त मौके बेमौके जरूरत बेजरूरत प्रशंसा किया करें और प्रातःकाल सोतेसे उठते ही उनका कमसे कम १०८ बार नामोच्चारण किया करें।

प्रायश्चित्तविधि होनेके पश्चात् विधिपूर्वक दीक्षा दी जायगी और फिर शास्त्रीजीको बहुतसी प्रतिज्ञाएँ ग्रहण करना पड़ेंगीं। कमेटीने फिलहाल नीचे लिखी प्रतिज्ञाएँ तजवीज की हैं—

१ मुजफ्फरनगरके महासभाके जलसेमें जब मेरे हाथसे जैनगजट छीना गया, तब नये दलके लोगोंने बाबू अजितप्रसादजीके द्वारा मेरा घोर अपमान करवाया था। ऐसा अपमान मेरा कभी नहीं हुआ। इस लिये महाराज नन्दकी भोजनशालामें अपमानित होकर जिस तरह चाणक्यने नव नन्दोंको नाश करके उनके सिंहासनपर मौर्यवंशीय चन्द्रगुप्तको बिठानेकी प्रतिज्ञा की थी उसीतरह आज मैं भी प्रतिज्ञा करता हूं कि जैसे बनेगा वैसे इस नये दलके लोगोंको बदनाम करनेका प्रयत्न करूंगा, इसके द्वारा जितनी संस्थाएं चल रही हैं उनपर अपनी कलमरूपी कुठार बराबर चलाता रहूंगा और इनके सिंहासनपर अपने आश्रय देनेवाले सेठोंको विराजमान करूंगा।

२ पं० गोपालदासजीका पहले मैं भक्त था, परन्तु मुजफ्फरनगरमें वे मेरा अपमान अपनी आखोंसे देखते रहे—मेरी उन्होंने जरा भी रक्षा नहीं की, इस लिये अब वे भी मेरे शत्रु हैं। जहांतक बनेगा मैं उन्हें भी लाञ्छित करनेके लिये कोई कसर बाकी नहीं रक्खूंगा।

३ मैं शपथपूर्वक कहता हूं कि इस समय मेरा कोई निजी मत या सिद्धान्त नहीं है। उक्त अपमानके कष्टके कारण मैं सब कुछ भूल गया हूं। मेरा वही मत है जो मुझे इस दुःखके समयमें आश्रय देनेवालोंका और मेरे अपमान करनेवालोंके चिरशत्रुओंका है। मैं वही लिखूंगा जो आप लोग लिखवायँगे और मैं वही करूंगा जो आप लोग करवायँगे।

४ जबसे मैं इस पक्षमें आया हूं, और आप लोगोंके द्वारा सम्मानित हुआ हूं तबसे मैंने यह समझ लिया है कि संसारमें धन और वैभवके समान कोई चीज़ नहीं है। धनकी बहुतसे कवियोंने निन्दा की है, परन्तु वास्तवमें वे धनका महत्त्व नहीं जानते थे। ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो धनसे साध्य न हो। इस समयमे मैं धनका एकान्त भक्त हूं और प्रतिज्ञा करता हूं कि जब तक जीता रहूंगा धनवानोंकी छत्र—छाया छोड़कर कहीं नहीं जाऊंगा। मुझे विश्वास है कि मैं इस छायामें रहकर अपने सारे मनोरथ पूर्ण करनेको समर्थ होऊंगा।

इन प्रतिज्ञाओंके समाप्त होनेपर पं० प्यारेलालजी स्वस्तिवाचन पाठ करेंगे और यदि मुंशी चम्पतरायजी साहब उपस्थित होंगे तो वे शान्तिपाठ पढ़कर कार्यकी समाप्ति करेंगे।

अन्तमें एक विराट् सभा होगी और उसमें अनेक व्याख्याताओंके संस्कृतमें या संस्कृत—बहुल भाषामें व्याख्यान होंगे। भले ही

उन्हें लोग समझे नहीं पर कमेटीके विचारमें उनका सर्वसाधारण-पर प्रभाव अच्छा पड़ेगा। व्याख्यानोंके लिये १ छापेका प्रचार रोकना चाहिए, २ खड़े होकर ईसाईयोंके समान उपदेश देना अनुचित है, ३ संस्थाओंके लिये पैसा पैसा भीख मांगना जैन-जातिको लज्जित करना है, ४ अंगरेज़ी शिक्षा धर्मघातक है, ५ हमारे पुराने रीति रवाज ही उन्नतिके मूल हैं, ६ धनिक गण ही जातिके खेवटिये हैं आदि विषय चुने गये हैं।

यह भी सुना है कि इसी समारंभमें जैनगजटके सहकारी सम्पादक बाबू अमोलकचन्दजी दीक्षित होनेवाले हैं। उनके लिये कमेटीने कोई प्रायश्चित्त तो तजवीज नहीं किये हैं परन्तु प्रतिज्ञा वे भी बहुतसी लेंगे।

विस्तृत समाचार समारंभ हो चुकनेपर भेजनेका प्रयत्न करूंगा।

एक संवाददाता।

---

# सम्पादकीय विचार।

## १ घरमें कलह।

दिगम्बर पहलेके और श्वेताम्बर पीछेके हैं, अथवा श्वेताम्बर पहलेके हैं और दिगम्बर पीछेके हैं। इस विषयपर मीमांसा करना हम उचित नहीं समझते और न इस विषयके इसवक्त उभारनेकी जरूरत है। क्योंकि यह समय किसी और ही कामके करनेके लिये हमें उत्तेजित करता है। हमें सबसे पहले अपनी जातिकी दशा देखनी चाहिये कि वह किस गिरी हालतमें है? और उसका उद्धार कैसे हो सकेगा?

हमें यह लिखते हुये बड़ा भारी दुःख होता है कि इस उन्नतिके जमानेमें जो हमारा कर्त्तव्य है और जिसके विना हम दिनोंदिन रसातलमें पहुंचे जा रहे हैं, उस ओर तो हम आंख उठाकर भी नहीं देखते और जो हमारा कर्तव्य नहीं है, जिनसे सिवाय जातिकी हानिके कुछ लाभ नहीं दीख पड़ता ऐसी आपत्तियां अपने शिरपर उठानेको तैयार रहते हैं। अभी एक झगड़ेकी समाप्ति होने न पाई थी कि दूसरा और एक नया उत्पात हमारे शिरपर आ उपस्थित हुआ। वह भी अपने ही भाइयोंके साथ। कुछ ही दिन बीते हैं कि मुल्तान शहरमें दिगम्बर और श्वेताम्बरोंके वीचमें बड़ी भारी गोलयोग उपस्थित हुआ था। नित नये विज्ञापन निकलते थे और परस्परमें एकके साथ एक बड़ी बुरी तरह सलूक करता था। पहली भूल किसकी थी यह हमें मालूम नहीं और किसी एककी हो तब भी हम दोनोंकी भूल कहेंगे। क्योंकि अब हमें इन घरेलू झगडोंकी जरूरत नहीं है। हमने बहुत दिनोंतक अपसमें मारामारी करली। अब हमें मिलकर जातिमें ज्ञानके प्रसार करनेकी जरूरत है। हमारे विचारोंमें मतभेद है, वह रहे। उससे हमें कुछ हानि नहीं। हानि है इस घरेलू कलहसे, जो हम भाई भाई आपसमें लड़कर दूसरोंको तमाशा दिखलाते हैं। यह हमारी कम समझी है—जो हम यह समझते हैं कि आज किसी वातका निकाल हो जायगा। जब बड़े २ ऋषि और आचार्योंके समयमें ही इन झगड़ोंकी जड़ नहीं मिटी तब वह इस वक्त मिटजाय यह नितान्त असंभव है। हम आज कई वर्षोंसे इन झगड़ोंको होते हुये देखते आते हैं, क्या आजतक किसी विषयका किसीने निकाल कर लिया है? फिर एक आवश्यकीय कामको छोड़कर व्यर्थकी बला खरीदना कहांतक अच्छा है यह हम नहीं कह सक्ते?

इन घरेलू झगड़ोंका महत्त्व कौन नहीं जानता ? आज भारतवर्षकी पुरानी हालतपर जरा ध्यान देकर आलोचना की जाय, उसके प्रभावशाली अखण्ड साम्राज्यपर विचार किया जाय तो मालूम होगा कि उसकी पहलीसी हालत अब नहीं है। पहले वह बड़ी उन्नत अव स्थावर था। परन्तु अब सीमान्त उसका अधःपात होगया है। ऐसे विशाल और सुरम्य देशका यह अधःपतन क्यों हुआ ? इसका उत्तर यही दिया जा सकता है कि ये घरेलू झगड़े—यह आपसका वैर विरोध उसके अधःपतनके प्रधान कारण हैं। जब इस आपसी बैर विरोधसे बड़े २ देश देखते २ नष्ट हो जाते हैं तब गिनतीके जैनी इस कलहसे—घरेलू शत्रुतासे अपनी रक्षाकर सकें यह असंभव है। भाइयो ! जरा विचारो और अपनी दुःखित जातिकी दशापर दया करो। अब तुम्हें इन झगड़ोंका समाजसे मुहँ काला कर देना चाहिये। इन्होंने तुम्हें बड़ी २ आपत्तियोंमें डाले हैं। यह देखकर और भी अधिक खेद होता है कि हमारे समाजके समाचारपत्र इस कलहको और अधिक बढ़ाकर जगद्विजयी होना चाहते हैं। हम नहीं जानते कि उन्होंने इससें क्या जातिकी उन्नति सोची है ? उनका कर्तव्य तो यह होना चाहिये था कि वे इस घरेलू कलहके नष्ट होनेकी सलाह देते। परन्तु ऐसा न करके वे जलती हुई अग्निमें और ऊपरसे घृताहुति डालना चाहिते हैं। वे कहते हैं कि आओ ! हम लड़नेको तैयार हैं, जब चाहो तब अपने दिलका गुवार निकाललो, हम कभी पीछे नहीं हटेंगे। किन्तु तुम्हें नीचा दिखाकर ही छोड़ेंगे, आदि, वाह ! क्या जगद्विजयी घोषणा है ? क्या उत्तम ज्योतिषीकी भविष्यवाणी है ? मानो विजय लक्ष्मी उनके हाथहीमें आ गई है।

पाठक! आप जानते हैं ये कौन हैं? यदि नहीं जानते तो हमसे पूछिये। हम आपको कहते हैं कि ये नारद हैं। इन्हें इसीमें आनन्द मिलता है कि घरहीमें लड़ा भिड़ाकर खूब तमाशा देखें। इन्हें इस बातकी परवा नहीं है। कि हमारे इस घड़ीभरके आनन्दसे जातिकी कितनी खराबी होगी? उसके उन्नतिपथमें कितना धका पहुंचेगा? जिनको हमारी जातिकी रक्षाका भार दिया गया है वे ही जब यह अनर्थ—यह अन्याय करनेको तैयार हैं, जातिमें अनेक्यताका राज्य फैलाकर उसे अज्ञानके अपार समुद्रमें धक्का देना चाहते हैं तब उनसे आप जो अपनी रक्षाकी आशा करते हैं—विल्लीके हाथ दूध सोंपकर उसे सुरक्षित रखना चाहते हैं। यह आपकी नितान्त ना समझी है। भक्षक कभी रक्षक नहीं बन सकता।

जैन जातिका अभी बड़ा दौर्भाग्य है जो उसके नसीबमें सुख नहीं। उसे घड़ीभरके लिये आपत्तियां आराम नहीं करने देतीं। भगवन्! अब तो इस गरीब जातिका उद्धार करो। यह बहुत दुःख भुगत चुकी है। अथवा हमें ही कुछ आत्मबल प्रदान करो जिससे हम हृदयकी कलुपता और संकीर्णता हटाकर अपनी जातिकी सेवा करें।

## २ आत्मापर कषायोंका प्रभाव।

आत्मा शुद्ध स्फटिककी तरह निर्मल है। उसमें किसी तरहका विकार नहीं है। परन्तु स्फटिकके पीछे जैसा रंगीन डांक लगा दिया जाता है लगानेके साथ उसमें भी वैसा औपाधिक रंग आ जाता है। ठीक यही हालत आत्माकी है। उसे जिस तरहका बाह्य साधन मिलता है उसी तरहका उसमें विकार पैदा होकर वह मलीन हो जाता है। आत्माको विकारवान करनेके प्रधान

कारण राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदिक हैं। ये उस आत्मा-पर बहुत जल्दी असर करते हैं जो निर्बल होता है। ये आत्मको वास्तविक शत्रु हैं। जब ये जीते जावँ तब ही वह विजयी कहा सकता है। एक निर्बलपर अत्याचार और अनर्थ करके अथवा गुणी; विद्वान, देशहितैषी, जातिहितैषी सज्जनको बुरा भला कहकर उसकी जनसाधारणमें निन्दा करनेसे कोई विजयी नहीं हो सकता। हमें पहले अपनी कषायें जीतनी चाहियें। क्योंकि जब जब आत्मापर उनका प्रतिबिम्ब पड़ता है तब तब आत्मा उनके परवश होकर जो काम नहीं करनेका है उसे करने लगता है। उसे उस समय अपनी मानवीय सभ्यताका कुछ खयाल नहीं रहता। वह अपने वा दूसरोंके हिताहितका विचार नहीं कर सकता। योगी महात्मा सबसेपहले अपनी कषायोंको नष्ट करते हैं और तब ही वे सबका हित करनेमें समर्थ होते हैं। सच तो है—जो स्वयं अपना भला नहीं कर सकता—अपनी कषायोंको वश नहीं करता वह क्या औरोंका हित कर सकेगा?

इन्हीं कषायोंका हमारी आत्मापर बड़ा भारी बुरा प्रभाव पड़ रहा है। हमारा इस समय क्या कर्त्तव्य है? उसे हम बिलकुल भूल गये हैं। हमारी, हमारी जातिकी और हमारे देशकी क्या हालत है? इसका हमें कुछ भी ज्ञान नहीं है। हम अपनी दशाको सुधारना छोड़कर उलटे प्रवाहमें जा पड़े हैं। शान्तिकी जगह अशांतिका राज्य स्थापन करना चाहते हैं, एक्यताकी जगह अनेक्यताको अच्छी समझकर उसकी सीमा बढ़ाना अच्छा समझते हैं। यद्यपि यह हमारा अज्ञान है—हमारी बड़ी भारी भूलहै परन्तु कषायोंके प्रभावने जो कि हमारे आंत्माको परवश किये हुये हैं हमें खूब मजबूत जकड़ रक्खा है—वह इस अज्ञानको—इस भूलको

समझने नहीं देता। इस लिये हमें पहले उस प्रभावको नष्ट करना चाहिये। तब ही हम अपना कर्त्तव्य जान सकेंगे।

### ३ जातीयकाममें त्रुटि।

जातीयकाममें यदि हमें किसी तरहकी त्रुटि दीख पड़े अथवा कोई काम अभी आरंभ नहीं हुआ है और उसका भविष्य हमें ठीक नही मालूम पड़े तो उससे होनेवाली हानियां हमें सयुक्तिक और शान्तिके साथ २ समाजके नेताओंको सुझा देनी चाहिये। इतनेपर यदि वे उसपर विचार न करें तो चुप हो जाना चाहिये। क्योंकि हमारा इतना ही कर्तव्य था। जातिके हम शुभचिन्तक हैं इस लिये हमने उसके भलाईकी बात कहकर अपना कर्त्तव्य पालन कर दिया। ऐसा न कर किसी तरहके द्वेपसे अथवा हृदयकी मलिनतासे उसके मूलपर ही कुल्हाड़ी चलाना यह सभ्यतासे बाहिर है। विचारशील हमें हमारे इस कर्त्तव्यसे अच्छा न बताकर मूर्ख द्वेपी और समाजकी उन्नतिके मार्गमें रोड़ा अटकानेवाला कहेंगे। क्योंकि जो मनुष्य शुद्ध हृदयसे किसी विपयकी सम्मति देता है और उसकी सम्मति कठोर शब्दोंमें भी है तो भी उसे सब स्वीकार करते हैं और जो मलिन—हृदयसे किसी तरहकी सलाह देता है वह फिर सरल शब्दोंमें क्यों न हो उसे सब घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। और जिसकी सम्मति कठोर शब्दोंमें होकर कलुषित हृदयसे दी गई है उसके सम्बन्धमें हम क्या कहें पाठक स्वयं निर्णय कर सकते हैं कि वह सलाह समाजके लोगोंके दिलपर कहांतक असर कर सकेगी? हमें उचित है कि हम जिस विषयकी सम्मति देते हैं, वह उचित

है या नहीं ? उससे समाजका हित होगा या अहित ? इस विषय-पर खूब सोच विचार करलें और फिर अपने विचार सब पर जाहिर करें विना विचार किये किसी कामको द्वेष वा ईर्षासे जो लोग झटपट कर डालते हैं उन्हें फिर—**विचार्यैव विधातव्यमनुतापोऽन्यथा भवेत्** इस उक्तिके अनुसार पश्चात्तापकी अग्निमें निरन्तर जलना पड़ता है।

## ४ मतभेद ।

पिता पुत्रमें, भाई भाईमें, मित्र मित्रमें, गुरु शिष्यमें, स्वामी सेवकमें और स्त्री पतिमेंतक मतभेद हुआ करता है। ऐसा समय कभी न तो आया और न आवेगा जब कि सबके विचार एक सरिखे होकर उनका मतभेद मिट जाय। मतभेद होता है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि आपका हमारा मतभेद है तो हम आपसे दुश्मनी करके आपके सर्वनाशका उपाय करें। अथवा आप हमारे साथ बुरा वर्ताव करें। परन्तु आज कल कुछ ना समझ लोगोंने मतभेदका यही अर्थ समझ रक्खा है कि जिनके साथ उनका मतभेद होता है फिर वे उनके सर्वनाशकी चेष्टा करते हैं और इसमें कसर रखना वे अपना अपमान समझते हैं। कसा बुद्धिका फेर है? जो मतभेद पदार्थ निर्णयके लिये हुआ करता है उसका आज कैसा दुरुपयोग किया जाता है? हमारी समझके अनुसार मतभेद होना हानिकारक नहीं है। परन्तु उसके जरियेसे परस्परमें दुश्मनी करना वहुत हानिकारक है। यदि मतभेदके कारण जैसी आज हम लोगोंमें दुश्मनी है,ऐसी ही सदा बनी रही तो इसमें कुछ सन्देह नहीं कि एक दिन हमारी जाति बिलकुल नष्ट हो जायगी।

जातिके हितैषियो ! यदि आप अपना मत परिवर्तन नहीं कर सकते तो मत करिये परन्तु हमारी प्रार्थनापर ध्यान देकर इस परस्परकी शत्रुताको अवश्य नष्टकर डालिये। यह हमारा सर्वनाश कर रही है। एककी त्रुटियां एकको बतानी चाहिये, परन्तु शान्तिके साथ। उससे कभी हमें हानि नहीं उठानी पड़ेगी। हृदयकी मलिनता हमें शान्ति प्रदान नहीं करती। इस लिये उसे हटाकर शुद्ध हृदयसे हमें जातिके हित साधनमें लगाना चाहिये। यही शान्ति हमें अपनी उन्नत्ति करनेमें पूर्ण सहायता प्रदान करेगी।

---

## पुस्तक–समालोचन।

**जैनसिद्धांतभास्कर**—जैनसिद्धान्तभवन आराका त्रैमासिक पत्र। सम्पादक और प्रकाशक श्रीयुक्त सेठं पदमराजजी रानीवाले। वार्षिक मूल्य ३) रुपया। जैनियोंमें सबसे पहला ऐतिहासिक विषयका प्रधान पत्र है। इसकी प्रथम किरणके दर्शनसे बड़ी खुशी हुई। पत्रके सुन्दर होनेमें कोई सन्देह नहीं। भविष्यमें जैनसमाजका इसके द्वारा बहुत कुछ मुख उज्वल होगा, ऐसी आशा की जाती है। इस किरणमें ऐतिहासिक लेखोंके अतिरिक्त छह सुन्दर चित्र हैं। इन चित्रोंमें **श्रुतस्कन्ध, जीर्णपत्रवृक्ष** और **जिनवाणीकी वर्तमान हीनावस्था** ये तीन चित्र बड़े सुन्दर और हृदयद्रावी हैं। जिनवाणीकी इतनी बुरी दशा देखकर सचमुच ही रोना आता है। धनिक जैनसमाजके लिये यह बड़ी भारी लज्जाकी बात है कि वह अपनी परम पवित्र जिनवाणीका इस हालतसे उद्धार करनेके लिये कुछ प्रयत्न नहीं करता। अब उसे उचित है कि वह इस पत्रको आश्रय देकर अपनी माताके उद्धारका उपाय करे। क्योंकि इस पत्रका जन्म जैन साहित्यको उन्नत करनेके लिये ही हुआ है। हम हृदयसे इस पत्रकी उन्नतिकी कामना करते हैं।

**आदिपुराण**—हमारे पास सात फार्म समालोचनाके लिये आये हैं। मूल ग्रन्थ भगवज्जिनसेनाचार्यका बनाया हुआ है। उसीका यह नवीन हिन्दी

अनुवाद है। अनुवादक हमारी जातिके परिचित पं. लालारामजी हैं। अनुवाद सरल बनानेके लिये बहुत चेष्टाकी गई है। इस महत्त्व पूर्ण ग्रन्थकी हम सरीखे अल्पज्ञ क्या आलोचना कर सकते हैं? परन्तु हां इतना अवश्य कहेंगे कि प्रथमानुयोगमें इस समय जितने महत्त्वका यह ग्रन्थ है उतने महत्त्वका शायद ही और ग्रन्थ निकलेगा। पं. पन्नालालजी बाकलीवालने इस ग्रन्थको नवीन हिन्दी भाषामें प्रकाशित करनेका प्रयत्न कर जैनजातिका बड़ा उपकार किया है। यह पूर्ण ग्रन्थ कमसे कम २५० फार्मके लगभगका होगा। उस समय इसकी कीमत भी संभवतः अधिक रहेगी। परन्तु जो अभीसे इसके ग्राहक बनेंगे वे बहुत लाभ उठा सकेंगे। यह अभी खण्डरूपमें प्रकाशित किया जा रहा है। पत्र इस पतेसे दीजिये। **पं. पन्नालालजी बाकलीवाल** ठि० स्याद्वादरत्नाकर कार्यालय **बनारस** सिटी।

**समाधिशतक**—पूज्यपादस्वामीके मूल ग्रन्थका यह मराठी अनुवाद है। अनुवाद सोलापुर निवासी रावजी नेमिचन्द सहाने किया है। अनुवादकी भाषा सरल है। थोड़ा भी मराठी भाषासे परिचय रखने वाले इसके द्वारा लाभ उठा सकते हैं। मूल ग्रन्थके साथ प्रभाचन्द्राचार्यकी संस्कृत टीका भी लगादी गई है। सारे ग्रन्थमें शुद्धात्मतत्त्वका वर्णन बड़ी सुन्दरताके साथ किया गया है। यह ग्रन्थ न केवल जैनियों के लिये उपयोगी है किन्तु सर्व साधारण भी इसके द्वारा लाभ उठा सकते है। की० छह आना है।

**सामायिक पाठ**—इसमें दो संस्कृत और एक पं० महाचन्दजी कृत भाषा सामायिक पाठका संग्रह किया गया है। संग्रह और संस्कृत पाठकी मराठी भाषा करने वाले उक्त लेखक महाशय हैं। मराठी जानने वाले जैनियोंके लिये उपयोगी है। की० दो आना है।

दोनों पुस्तकें जैन बुक डिपो **शोलापुर** चाटीगलीके पतेसे मिलेंगी।

**पूर्णविवरण**—अजमेरमें जो आर्यसमाजियोंके साथ जैनियोंका शास्त्रार्थ हुआ था उसीका यह खुलास हाल तत्त्वप्रकाशिनीजैनसभा इटावाकी ओरसे प्रकाशित किया गया है। इसके सम्बन्धमें विशेष न लिखकर पाठकोंसे अनुरोध करते हैं कि वे इसे एक वक्त अवश्य पढ़ें। इसके द्वारा वे बहुत कुछ तत्थ्य निकाल सकेंगे। की० ढाई आना।

**जैनवाग्विलास**—मराठीभाषाका सचित्र मासिक पत्र। वार्षिक दो रुपया। मिलनेका पता जैनवाग्विलास ऑफिस वर्धा। इस पत्रका जन्म भी नवीन हुआ है। मराठी जैनसमाजको इस पत्रके द्वारा बहुत कुछ लाभके पहुँचनेकी आशा है। लेख उत्तम और सुपाठ्य हैं। इस पत्रके सम्पादक दत्तात्रय भिमाजी रणदिवे जैनसमाजमें मराठी भाषाके अच्छे कवि हैं। पत्रकी उन्नति हम हृदयसे चाहते हैं। छपाई और मूल्यमें कुछ परिवर्तनकी जरूरत है।

**प्रथमवार्षिक रिपोर्ट**—जीवदयाप्रचारक जैनसभा फिरोजपुरकी यह पहले वर्षकी रिपोर्ट है। इसे देखकर यह कहना पड़ता है कि सभा अपना काम बड़े उत्साहके साथ कर रही है। इसके सेक्रेटरी अमोलकचन्दजी बड़े उद्योगी जान पड़ते हैं। अहिंसाधर्मके धारकोंको उचित है कि वे इस सभाको सब तरह सहायता पहुँचावें। जीवरक्षाके लिये इस सभाने जो उद्योग किया है वह बहुत उत्तम है।

**सार्वधर्म**—प्रातःस्मरणीय स्याद्वादवारिधि श्रीयुक्त पं० गोपालदासजीके हिन्दी ट्रैक्टका यह मराठी अनुवाद है। अनुवादक शोलापुर निवासी श्रीयुत जीवराज गौतमचन्द दोशी हैं। ट्रैक्टके सम्बन्धमें इतना ही कहना हम उचित समझते हैं कि इसके रचयिता हमारी जातिके एक अपूर्व विद्वद्रत्न हैं। तब पाठक स्वयं समझलें कि उक्त ट्रैक्ट कितने महत्त्वका होगा? की० एक आना। सुपरिंटेंडेण्ट जैन बोर्डिंग कोल्हापुरके पतेपर मिल सकेगा।

---

# सामाजिक समाचार।

**श्रीऋषभब्रह्मचर्याश्रम**—कार्तिक शुक्ल ८ से चतुर्दशीतक हस्तिनापुरमें प्रतिवर्ष मेला हुआ करता है। अबकी बार मेलेपर सम्मिलित होने वालोंको उक्त आश्रमके वार्षिक अधिवेशनके देखनेका भी सौभाग्य प्राप्त होगा। अधिवेशन खूब धूम धामके साथ होगा, ऐसा जान पड़ता है। क्योंकि उसके लिये अभीसे तैयारियां की जा रही हैं।

**विदेश गमन**—कोल्हापुरसे दो जैन विद्यार्थी चित्रकलाका अभ्यास करनेके लिये इटली गये हैं। इन नव युवकोंकी इच्छा पूर्ण हो। जातिके लिये सौभाग्यकी बात है।

**धूपदशमी**—बड़नगरमें इस दिन अच्छा उत्सव होता है। सब जैनमंदिरोंमें खूब रोशनी लगाई जाती है। शहरभरके आदमी आजका उत्सव देखनेके लिये आते हैं। थी तो धूपदशमी, परन्तु कुछ ना समझ लोगोंने विद्यादानके लिये रखी हुई गोलकको फेंककर इसे खासी धूमदशमी बना डाली थी।

**दवा मुफ्त**—लाला भगवानदासजी हैजेकी दवा मुफ्त वितीर्ण करते हैं। दवा आजमाई हुई है। जिन्हें जरूरत हो वे बड़नगर ( मालवा ) के पतेसे पत्र लिखकर मँगालें।

**पर्यूषण पर्व**—बड़नगरमें बड़ी अशान्तिसे बीता। विद्याशत्रुओंने बड़ी धींगाधींगी की थी।

**मनुष्याहार**—इस पुस्तकमें बड़े २ विद्वान् अंग्रेजोंके मतको लेकर मांसका खाना बुरा बतलाया गया है। अभी इसकी दो हजार कापियां छपवाई गई थीं। वे सब वितीर्ण करदी गईं। अब पांच लाख प्रतिके छपवानेकी आयोजना की जा रही है। पुस्तक बड़ी उपयोगी है। अहिंसा धर्मके माननेवालोंको इस परोपकारके कार्यमें बाबू दयाचन्दजी जैन बी. ए. ललितपुर ( झांसी ) के पतेपर द्रव्य भेजकर सहायता पहुँचानी चाहिये।

**चतुरबाईश्राविकाविद्यालय**—इस नामकी हालहीमें एक नवीन संस्था शोलापुरमें खुली है। इसमें गुलाबचन्द रेवचन्दकी माताने ११,००० ) रु. और देवचन्द हीराचन्दकी धर्मपत्नीने १०,००० रु. एक मुश्त दिये हैं। इन विदुषी महिलाओंको धन्यवाद है। जातिकी और २ महिलाओंको भी इनका अनुकरण करना चाहिये।

**महासभा ध्यान दे**—जब कि महासभाके कार्यकर्त्ता शुद्ध दिलसे कार्य करनेका ढोल पीट रहे हैं तब उसके मुखपत्र जैनगजटमें आपसमें ईर्षा और द्वेषके बढ़ानेवाले असभ्यता पूर्ण लेख क्यों छापे जा रहे हैं? जान पड़ता है-महासभाके कार्यकर्त्ता स्वयं शान्तिप्रिय नहीं हैं। नहीं तो क्या वे सम्पादक महाशयको इसके लिये हिदायत न करते? देखें यह मनमानी कहांतक की जाती है?

**सहायता कीजिये**—महाविद्यालयसे पृथक् हुये सात विद्यार्थियोंके लिये छात्रवृत्तिका उचित प्रबन्ध नहीं है। पं. पन्नालालजी कुछ सहायता करते हैं, परन्तु वह उपयुक्त नहीं है। इस लिये विद्याप्रेमियोंको पंडितजीके पतेसे द्रव्य भेजकर विद्यादानका पुण्य संग्रह करना चाहिये।